उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा का एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—४ फरवरी—१९८५ अंक—२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सह संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२०० रु०
षड् वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५५ रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

मैदान में जमा हुआ पानी किसी के इस्तेमाल न करने पर भी अपने आप धूप से सूख जाता है। पापी मनुष्य भी यदि ईश्वर के ऊपर निर्भर होकर पड़ा रहे तो उनकी दया से अपने आप पवित्र हो जाता है।

(२)

जिन्दगी भर पाप और नरक की बात क्यों करते रहते हो? भगवान का नाम लो। एक बार कहो, "हे प्रभो, मुझे जो करना चाहिए था वह मैंने नहीं किया, जो नहीं करने चाहिए वही काम किये हैं; मुझे क्षमा करो!" पूरे विश्वास के साथ उनसे प्रार्थना करो, तुम्हारे सारे पाप नष्ट हो जाएँगे।

(३)

जो पुश्तैनी किसान होता है वह बारह वर्ष सूखा पड़ने पर भी खेती नहीं छोड़ता, पर जो आदमी हाल में ही खेती की ओर बढ़ा है वह एक साल बारिश न हो तो खेती करना छोड़ देता है। यथार्थ विश्वासी भक्त सारे जीवन में ईश्वर के दर्शन न मिलने पर भी हताश होकर साधना छोड़ता नहीं।

(४)

कुछ मछलियों में बहुत अधिक काँटे होते हैं और कुछ में एक ही काँटा होता है; पर मछली खानेवाला खाते समय सभी काँटों को निकाल फेंकता है। इसी तरह, कुछ लोगों में अत्यधिक पाप होते हैं, तो कुछ में एक-आध ही; परन्तु ईश्वर की कृपा होने पर सभी के पाप दूर हो जाते हैं।

श्रीरामकृष्ण स्तवन

—श्रीसारदातनय
नागपुर ।

(१)

जय देवदेव करुणावतार । जनदेवगम्य संसारसार ॥

मायाविहीन सच्चितस्वरूप लीलाविलासधृतविविधरूप ।
राजाधिराज भुवनैकभूप भूताधिवास भवकर्णधार ॥

कमनीयरूप नयनाभिराम मांगल्यमूल कल्याणधाम ।
अज निष्प्रपंच परिपूर्णकाम अद्वय तुरीय शिव निर्विकार ॥

चैतन्यनाथ स्वानंदकंद भवरोगवैद्य जितनिखिलबंध ।
अतुलप्रताप रिपुदलकराल साधक विशुद्धमानसविहार ॥

विश्वप्रणम्य त्रयतापनाश कामादिदोषहर चित्प्रकाश ।
प्रणतोऽस्मि नाथ शरणं प्रयच्छ हे रामकृष्ण भवभयनिवार ॥

(२)

जय जय प्रभु रामकृष्ण भवविकारहारी ।
जय जय जय परब्रह्म मानुषतन धारी ॥

मोह अंधकार घोर, छाया जब चार ओर ।
प्रकटे तब प्रखर भानु तिमिरहरणकारी ॥

सकल जगत के आधार, कृपासिंधु अति उदार ।
नाशत भवदुःख भार प्रभु युगावतारी ॥

दीनबंधु दीनशरण तुम ही भवसिंधुतरण ।
याचत नित अभय चरण तव कृपाभिखारी ॥

हमारा परिवेश : श्रीरामकृष्ण के सन्देश

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

अभी-अभी भारत-सरकार के महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्यरत कई ऊँचे पदाधिकारी अपने देश की सरकार के कई गोपनीय एवं अत्यन्त संवेदनशील दस्तावेजों को चोरी-चोरी विदेशी दूतों के हाथ बेचने एवं जासूसी के आरोप में गिरफ्तार किये गये हैं। ये पदाधिकारी प्रधान-मंत्री के सचिवालय, राष्ट्रपति के निवास तथा अन्य विभागों में ऊँचे पदों पर कार्यरत थे। जानकार सूत्रों के अनुसार ज्यादातर दस्तावेज रक्षा, विज्ञान, तकनीक, प्रौद्योगिकी एवं आणविक ऊर्जा विभागों से संबन्धित हैं। गिरफ्तार अफसरों से पूछ-ताछ करने पर पता चला है कि उन्हें प्रति दस्तावेज पाँच सौ रुपये या पुरानी विदेशी शराब की एक बोतल कीमत के रूप में दी जाती थी।

अभी हाल में अपने देश की सुप्रीम कोर्ट ने सरकार से कहा है कि वह कानून में उचित संशोधन करे जिससे हिरासत में रखे गये व्यक्ति पर अत्याचार करनेवाली पुलिस साक्ष्य के अभाव में बच न सके। इसी क्रम में उच्चतम न्यायालय ने कहा—'यह कैसी विडंबना है कि एक आदमी जिसने पुलिस के खिलाफ घूसखोरी की शिकायत की उसको पुलिस वालों ने ही मार डाला। मारनेवाले पुलिस सिपाही के दो सहयोगी और उसका अधिकारी दारोगा था।'

सरस्वती पूजा, दुर्गापूजा आदि के अवसरों पर हमारे स्कूल-कॉलेज के छात्र बसों, ट्रकों और कारों को रोककर उनके चालकों से जबर्दस्ती पैसे उगाहते हैं। पूजा के नाम पर ऐसी हरकतें बराबर हो रही हैं।

स्कूल-कॉलेजों में आये दिन छात्रों के दल पिस्तौल और बन्दूकें निकालकर आपस में ही गुत्थम-गुत्थी किया करते हैं।

युवतियों के साथ छेड़-छाड़, बलात्कार की घटनाएँ तेजी से बढ़ रही हैं। लूट-पाट, राहजनी, चोरी-डकैती में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

बेकार और बेरोजगार युवक हाथों में ऊँची-ऊँची डिग्रियाँ लेकर जुलूस और नारे लगाते हुए सड़कें नाप रहे हैं।

पंजाब और आसाम की समस्याएँ देश को मथ रही हैं।

धार्मिक तनाव और साम्प्रदायिक शंकाएँ और संघर्ष देश को जर्जर किये जा रहे हैं।

घूसखोरी, चीजों में मिलावट, तौल में कमी, परीक्षाओं में कदाचार तथा शिक्षकों के द्वारा अपने रक्षितों या सम्बन्धियों को ऊँचे अंक दिलाने के लिए की जाने वाली घटिया दर्जे की कोशिशें देश के स्वास्थ्य में घुन के कीड़े की तरह प्रवेश कर रही हैं।

कैसा हो गया है हमारा परिवेश? कहाँ जा रहे हैं हम? हम, जो एक ऊँची सांस्कृतिक धरोहर और धार्मिक परम्परा के उत्तराधिकारी हैं, क्या से क्या हो गये हैं! लगता है, कुल मिलाकर हमारा परिवेश हिरोइन (कामिनी), हेरोइन (मादक द्रव्य) और हिंसा का त्रिपुर बनकर रह गया है।

भोपाल की युनियन कार्बाइड गैस के रिसने से कुछ हजार लोगों की जानें रातों-रात चली गयी थीं। लेकिन लगता है हमारे पूरे परिवेश में ही एक अन्य प्रकार की युनियन कार्बाइड गैस रिसने लगी है और हम एक दमघोंटू वातावरण में जीने को अभिशप्त हो गये हैं। आखिर ऐसा क्यों है? वह कौन सा विष-कीट है जो हमारी राष्ट्रीय काया को कुतर-कुतर कर खाये जा रहा है और फिर इस भयावह अंधकार से उबरने का क्या उपाय है?

हमारा ध्यान स्वभावतः श्रीरामकृष्णदेव की ओर मुड़ता है। श्रीरामकृष्ण ने प्रत्यक्षतः भारत या भारत की राजनीतिक समस्याओं के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा। उन्होंने तो केवल अपने सामने उपस्थित लोगों के बीच धार्मिक

चर्चाएँ कीं। लेकिन उन्होंने एक आदर्श और पूर्ण जीवन जिया था। हम उनके जीवन से और उनके उपदेशों से आज भी प्रेरणा और प्रकाश लेकर स्वयं को तथा अपने सारे राष्ट्रीय जीवन को समुन्नत एवं धन्य बना सकते हैं।

हम ऊँचे पदों पर रहकर भी अपने देश के ही विरुद्ध जासूसी करते हैं। और वह भी एक बोतल स्कॉच (विदेशी शराब) के लिए। कितने गिर गये हैं हम! कितनी शर्म की बात है यह! कारण यह है कि हमने ऊँची डिग्रियाँ तो अर्जित कीं लेकिन हमने अपना चरित्र नहीं गढ़ा। फल यह हुआ कि हमें ऊँचे पद तो मिले मगर मनुष्यत्व नहीं मिला। और कोई भी देश इस बात से महान् नहीं बनता कि उसके पास सेना कितनी बड़ी है, धन कितना है, शस्त्र कितने हैं तथा उसकी संसद कैसे-कैसे कानून बनाती है, बल्कि इस बात से महान् बनता है कि उसके मनुष्य कैसे हैं? श्रीरामकृष्ण ने आधुनिक दृष्टि में कोई शिक्षा नहीं पायी थी। "दाल-रोटी दिलानेवाली विद्या मुझे नहीं चाहिए, मुझे तो वही विद्या चाहिए जिससे हृदय में ज्ञान का उदय होकर मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।"—श्रीरामकृष्ण ने अपने बचपन में ही यह तर्क अपने बड़े भाई को दिया था। और उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए उन्होंने कुछ उठा नहीं रखा।

श्रीरामकृष्ण के जीवन के आचार ही भारतीय समाज की आचार संहिता (Code of conduct) बन सकते हैं। आप कहेंगे, जिस विद्या से दाल-रोटी ही नहीं मिले वह हमारे किस काम की? आप ठीक हीं कहेंगे। श्रीरामकृष्ण को दाल-रोटी दिलानेवाली विद्या से चिढ़ नहीं थी। लेकिन वे दाल-रोटी की अपेक्षा जीवन-चारित्र्य की उच्चता को अधिक महत्त्व देते थे। केवल दाल-रोटी दिलानेवाली विद्या पाकर हम देश की जासूसी करेंगे, एक बोतल स्कॉच के लिए हम अपने पूरे देश को मिटियामेट कर देने में भी नहीं हिचकेंगे, सिपाही के विरुद्ध घूस लेने की शिकायत करने आनेवाले की दारोगा की हैसियत से, हम पीट-पीटकर हत्या कर देंगे और बूथों पर कब्जा कर मत-पत्रों की जबरन छपाई करेंगे तथा लोकतंत्र के पूरे ढाँचे को नेस्तनाबूद कर देंगे। विद्या ऐसी हो जो चरित्र की कीमत पर नहीं, चरित्र के साथ ही दाल-रोटी दे।

जो विद्या केवल दाल-रोटी देती है वही कामिनी और कांचन की ओर हमें ढकेलती है। कामिनी और कांचन हमारी भोगवृत्ति के परिणाम हैं। फ्रायड और मार्क्स ने कामिनी और कांचन के महत्त्व पर विशेष बल दिया है। लेकिन कामिनी और कांचन हमें क्षणिक सुख दे सकते हैं, शाश्वत तृप्ति नहीं, हममें कभी न बुझने वाली आग की दहकती लपट पैदा कर सकते हैं, हमारे भीतर अकथनीय और अखण्ड आनन्द की शीतल अमृतधारा नहीं बरसा सकते। कामिनी और कांचन हमें भोगोन्मुख बना सकते हैं त्यागोन्मुख नहीं। और अमृतधारा की प्राप्ति त्याग से होती है, भोग से नहीं। वेद कहते हैं, 'न धनेन न प्रजया त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः।' धन और जन से नहीं, त्याग से ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है। लेकिन आप फिर कहेंगे, अरे भाई, अमृतत्व चाहता कौन है? ठीक है, आप नहीं चाहें इसे। लेकिन आप सुख और शान्ति तो चाहते है! आप आनन्द और विश्रान्ति तो चाहते हैं! तो भी इन दोनों से बचना होगा। कामिनी कांचन की प्राप्ति के लिए हमें प्रेरित करती है और कांचन हम में कामिनी की पिपासा उत्पन्न करता है। दोनों ही हमें गिराते हैं, दोनों ही हमारे दिव्य स्वरूप से पतित कर हमें दासता, हीनता और अनैतिकता की ओर ठेलते हैं। श्रीरामकृष्ण कहते हैं "कामिनी के कारण ही कांचन की जरूरत होती है। उसके लिए दूसरे की दासता ग्रहण करनी पड़ती है। तुम अपनी इच्छानुसार काम नहीं कर सकते। कामिनी कांचन की आसक्ति के रहने पर ही विद्या का अहंकार, रुपयों का अहंकार, ऊँचे पदों का अहंकार—ये सब होते है।'

श्रीरामकृष्ण प्रत्येक नारी को मातृ भाव से देखते थे। उस माता की दृष्टि से जिसमें जगन्माता विराज रही हों। स्वभावतः उनमें कामासक्ति की गंध तक नहीं

थी। कौर कंचन के प्रति अनासक्ति का यह हाल था कि अनजाने भी यदि पैसे से उनका स्पर्श हो जाय तो उनके हाथ-पाँव मुड़ जाते थे। और साँस बन्द हो जाती थी। धातु के पात्र का कहीं स्पर्श हो जाता तो बिच्छू के डंक मारने के समान उन्हें पीड़ा होती थी। पतित से पतित स्त्रियों में भी उन्हें जगन्माता का ही रूप दिखाई देता था। क्या अर्थ है इसका? क्या हम सब वैसे ही हो जायँ! क्या हम सब उनकी तरह हो भी सकते हैं! नहीं। स्वयं श्रीरामकृष्ण का कहना था कि 'मैं यदि सोलह आने नाचूँगा तो कहीं तुम लोग एक आना नाचोगे।' अर्थात् श्रीरामकृष्ण के आचरण से हम प्रेरणा ले सकते हैं और उन्हें अपने जीवन में उतारने की कोशिश कर स्वयं को और सारे समाज को समुन्नत और समृद्ध कर सकते हैं। प्रत्येक स्त्री में जगन्माता को देखने की दृष्टि अपनाकर हम न केवल अपने देश की नारियों का सम्मान करना सीखेंगे और उनकी मर्यादा की रक्षा कर सकेंगे बल्कि अपने भीतर जनमने वाली कामुकता, लम्पटता और बलात्कार की पाशविक वृत्ति का भी नियमन कर सकेंगे। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम गृहस्थ नहीं रह सकेंगे। नहीं, इसका सीधा अर्थ यह है कि हम एक अच्छे, सभ्य, शान्त, संभ्रान्त और सुसंस्कृत गृहस्थ हो सकेंगे।

श्रीरामकृष्ण जब पैसों को छूने से दंश-दाह का अनुभव करते हैं तब वे प्रकारान्तर से हमें यह कहना चाहते हैं कि हम भौतिकवादी दृष्टि का अतिक्रमण करें। हम केवल भौतिकवादी होकर न स्वयं सुखी हो सकते और न समाज को सुखी बना सकते। यह भौतिकवादिता की दृष्टि है जो हमें जीवन भर अशेष कामनाओं की तरंगों में उठाती-गिराती रहती है। यह भौतिकवादी वृत्ति है जो हमसे पाँच सौ रुपयों और शराब की एक बोतल पर देश के साथ गद्दारी करने की प्रेरणा देती है।

आप कह सकते हैं, हम कामिनी-कांचन में इतने आसक्त हो गये हैं कि उनसे क्या आसानी से छुटकारा मिल सकता है? श्रीरामकृष्ण एक उपाय सुझायेंगे। जैसे कोई किसी कुत्ते को बहुत लाड़-प्यार करे, उसके मुँह से मुँह सटाये रहे तो उसे फिर हटाना आसान नहीं होता, उसी प्रकार हमें भी कामिनी कांचन से आसक्ति है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं—'जिस कुत्ते को तुम इतने दीर्घकाल तक छाती से लगाते आये हो उससे अब अगर तुम छुटकारा पाना भी चाहो तो वह भला इतनी आसानी से क्यों छोड़ने चला। तब भी कोई हर्ज नहीं। अब से तुम उसका लाड़ करना छोड़ दो और अगर वह तुम्हारी गोद में चढ़ने आये तो उसकी अच्छी तरह से मरम्मत करो। ऐसा करने पर कुछ ही दिनों के अन्दर तुम उससे पूरी तरह छुटकारा पा जाओगे।"

हमारे धार्मिक उन्मादों और साम्प्रदायिक दंगों का मुख्य कारण है हमारा अज्ञान, अपने धर्म को श्रेष्ठ मानने की हठवादिता और दूसरे धर्म को अपने धर्म से हीन मानने की संकीर्ण दृष्टिभंगी। श्रीरामकृष्ण समझाते हैं, "बड़े तालाब में बहुत से घाट होते हैं। किसी भी घाट से उतरने पर एक ही पानी मिलता है, इसलिए 'मेरा घाट अच्छा है, तुम्हारा घाट अच्छा नहीं' इस तरह परस्पर झगड़ना निरर्थक है। इसी प्रकार, सच्चिदानन्द-सरोवर में भी अनेक घाट हैं। यथार्थ में व्याकुल होकर लगन के साथ इनमें किसी भी एक घाट के सहारे आगे बढ़ो, तुम अवश्य ही सच्चिदानन्द-सरोवर में उतर सकोगे। ऐसा कभी न कहो कि मेरा धर्म श्रेष्ठ है।" हम जानते है कि श्रीरामकृष्ण ने स्वयं प्रायः सभी धर्मों की साधना की थी और सब की सत्यता की प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त कर घोषणा की थी—'यत मत तत पथ।' जितने मत हैं, ईश्वर के यहाँ पहुँचने के लिए उतने ही पथ हैं। सभी पथ सच हैं। किसी ने श्रीरामकृष्ण से प्रश्न किया, 'यदि सभी धर्मों के भीतर एक ही ईश्वर का वर्णन है तो फिर हरएक धर्म के वर्णनानुसार ईश्वर अलग-अलग क्यों प्रतीत होता है?' श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया, "ईश्वर एक है परन्तु उनके भाव विविध हैं। जिस प्रकार घर का प्रमुख व्यक्ति एक ही होता है परन्तु वह किसी का पिता, किसी का भाई, तो किसी का पति

लगता है—उसी प्रकार भाव भिन्न-भिन्न होते हुए भी ईश्वर एक हैं।"

भारतवर्ष में साम्प्रदायिक एकता जब कभी होगी तो वह श्रीरामकृष्ण के द्वारा बताये गये मार्गों पर चलने पर ही हो सकेगी, इसमें संदेह नहीं। वे एक समन्वित दृष्टिभंगी चाहते थे, एक रासायनिक संस्कृति चाहते थे। उनका अमृत-वचन है—"मनुष्य को ईसाइयों की की तरह दयावान, मुसलमानों की तरह बाह्य विधि-निषेधों के प्रति दृढ़ आस्थावान तथा हिन्दुओं की तरह सब के प्रति उदार एवं दानशील होना चाहिए।' उन्होंने कहा—"हर एक को अपने स्वधर्म का ही पालन करना चाहिए। ईसाई को ईसाई धर्म का, मुसलमान को मुसलिम धर्म का पालन करना चाहिए। हिन्दुओं के लिए प्राचीन आर्य ऋषियों का सनातन मार्ग ही श्रेयस्कर है।"

क्या श्रीरामकृष्ण सांसारिकता के विरोधी हैं? नहीं। वे संसार में रहने के विरोधी नहीं हैं, संसार को अपने में रखने के विरोधी हैं। वे संचय के विरोधी हैं, ईमानदारी से कमाई के नहीं। संसार में हम हैं तो हमें रुपये-पैसे चाहिए ही। लेकिन प्रश्न है कैसे? एक भक्त ने उनसे पूछा, 'महाराज, क्या मुझे ज्यादा पैसा पाने के लिए कोशिश करनी चाहिए?' श्रीरामकृष्ण का उत्तर था—"हाँ, यदि तुम विवेक-विचार के साथ संसार-धर्म का पालन करो तो ऐसे संसार के लिए आवश्यक धन कमा सकते हो, पर ख्याल रहे कि तुम्हारी कमाई ईमानदारी की हो...।" असल में श्रीरामकृष्ण कामिनी का पूर्ण त्याग संसारियों के लिए आवश्यक मानते भी नहीं थे। वे कहते थे—"कामिनी-कांचन का पूर्ण त्याग संन्यासी के लिए है। पर तुम जैसे गृहस्थों के लिए इतना कठिन नियम नहीं है...। तुम ईश्वर की ओर मन रखकर, अनासक्त भाव से स्त्री के साथ रह सकते हो।" अन्यत्र वे कहते हैं—"तुम्हें रुपये की ओर इस दृष्टि से देखना चाहिए कि उससे दाल रोटी मिलती है, पहनने के लिए कपड़ा और रहने के लिए मकान मिलता है, ठाकुरजी की पूजा और साधु-संतों की सेवा होती है। परन्तु धन संचय करना व्यर्थ है। मधुमक्खियाँ कितनी मेहनत से छत्ता तैयार करती हैं, पर कोई दूसरा ही आदमी आकर उसे तोड़ ले जाता है। स्त्री का पूरी तरह त्याग तुम लोगों के लिए नहीं है। परन्तु लड़के-बच्चे हो जाने पर पति-पत्नी को भाई-बहन की तरह रहना चाहिए।' यह है सांसारिक जीवन जीने की सम्यक् और समन्वित दृष्टि। यदि हम इस आदर्श को अपने जीने की कला में ढाल लें, यदि इस आदर्श को हम अपना जीवन-दर्शन और जीवन-संगीत बना लें तो क्या हमें एक बोतल स्कॉच के लिए या मात्र पाँच सौ रुपयों के लिए देश की जासूसी करने की जरूरत होगी? क्या घूस नहीं देने के लिए किसी की हत्या करनी पड़ेगी! क्या रुपयों के लिए युवतियों का अपहरण कर उनके साथ बलात्कार करने की नौबत आयगी? क्या फिरौती के लिए छोटे-छोटे अबोध शिशुओं को अपहरण करने या राहजनी, लूट और हिंसा करने तथा मादक द्रव्यों, हेरोइन, गाँजा आदि के सेवन करने की आवश्यकता रह जायगी? नहीं, कदापि नहीं। तब हम प्रत्येक जीव को शिव-भाव से देखने की दृष्टि पा जायँगे।

वस्तुतः श्रीरामकृष्ण आज हमारी सबसे बड़ी माँग हैं, सबसे बड़ी जरूरत हैं, सब से बड़ी आकांक्षा हैं, अभीप्सा हैं। हम अँग्रेजी शासन की कड़ाह से निकल कर पश्चिमी सभ्यता, भौतिकता, भोगवृत्ति और शिश्नोदरपरायणता के चूल्हे में आ गिरे हैं। हम पतन के उस अतल तल में पहुँच गये हैं जहाँ से हमें श्रीरामकृष्ण ही निकाल सकते हैं। हमारे वर्त्तमान परिवेश में श्रीरामकृष्ण, एकमात्र श्रीरामकृष्ण हमारी आकुल-आतुर पुकार हैं। इस घने अंधकार से उनके संदेश ही हमें और हमारे देश को उबार सकते हैं।

श्रीरामकृष्ण अपने संदेशों के प्रति हम में अभिरुचि उत्पन्न कर, अपने अग्नि-मन्त्रों में हमें दीक्षित कर हमारे ताप-तप्त जीवन में शान्ति, प्रीति, सहिष्णुता और शिवात्मकता का मधुर संगीत भरें—आज के परिवेश में उनसे यही मेरी आंतरिक प्रार्थना है। जय श्रीरामकृष्ण!

□

युगावतार श्रीरामकृष्णदेव के प्रति

—निराला

[महाकवि निराला के काव्य संकलन 'नये पत्ते' से साभार—सं०]

पराधीन भारत की प्रज्ञा, क्षीण हुई जब
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्णत्रय पश्चिम में गत।
जागे पराशक्ति के वैभव स्वप्रकाश तब,
आरपार के बिना तार के नाद अनाहत॥

हे समृद्ध, बहुविध साधन से सिद्ध हुए तुम,
अक्षर विविध रूप के, एक विन्दु में अवसित।
अनायास हे, स्नेह-पाश से विद्ध हुए तुम,
अरचित रुचि की रचनाओं में हुए समाहित॥

अभिनन्दन के नूतन बन्दनवार बने तुम,
तरुणों के उच्छ्वास करों से उत्थित होकर।
जैसे बादल में विद्युत व्यञ्जना घने तुम
खोई सृष्टि सकल नव-जल-धारा में रोकर॥

फिर नूतन प्रभात में नूतन कर से आये,
ज्योतिर्मय, फिर हँसकर दिङ्दिगन्त पर छाये।

***

हिन्दू धर्म और श्रीरामकृष्ण

—स्वामी विवेकानन्द

शास्त्र शब्द से अनादि अनन्त 'वेद' का तात्पर्य है। धार्मिक व्यवस्थाओं में मतभेद होने पर एकमात्र वेद ही सर्वमान्य प्रमाण है।

पुराणादि अन्य धर्मग्रन्थों को स्मृति कहते हैं। ये भी प्रमाण में ग्रहण किये जाते हैं, किन्तु तभी तक, जब तक वे श्रुति के अनुकूल कहें, अन्यथा नहीं।

'सत्य' के दो भेद हैं; पहला, जो मनुष्य की पंचेन्द्रियों से एवं तदाश्रित अनुमान से ग्रहण किया जाय, और दूसरा, जो अतीन्द्रिय सूक्ष्म योगज शक्ति द्वारा ग्रहण किया जाय।

प्रथम उपाय से संकलित ज्ञान को 'विज्ञान' कहते हैं और दूसरे प्रकार से संकलित ज्ञान को 'वेद' कहते हैं।

अनादि अनन्त अलौकिक वेद-नामधारी ज्ञान-राशि सदा विद्यमान है। सृष्टिकर्ता स्वयं इसी की सहायता से इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और उसका नाश करता है।

यह अतीन्द्रिय शक्ति, जिनमें आविर्भूत अथवा प्रकाशित होती है, उनका नाम ऋषि है। और उस शक्ति के द्वारा वे जिस अलौकिक सत्य की उपलब्धि करते हैं, उसका नाम 'वेद' है।

यह ऋषित्व और वेद-दृष्टि का लाभ करना ही यथार्थ धर्मानुभूति है। जब तक यह प्राप्त न हो, तब तक 'धर्म' केवल बात की बात है, और यही मानना पड़ेगा कि धर्म राज्य की प्रथम सीढ़ी पर भी हमने पैर नहीं रखा।

समस्त देश, काल और पात्र में व्याप्त होने के कारण वेद का शासन अर्थात् वेद का प्रभाव देश विशेष, काल विशेष अथवा पात्र विशेष तक सीमित नहीं।

सार्वजनिक धर्म की व्याख्या करनेवाला एकमात्र वेद ही है।

अलौकिक ज्ञान-प्राप्ति का साधन यद्यपि हमारे देश के इतिहास-पुराणादि और म्लेच्छादि देशों की धर्म-पुस्तकों में थोड़ा-बहुत अवश्य वर्त्तमान है, फिर भी, अलौकिक ज्ञानराशि का सर्वप्रथम पूर्ण और अविकृत संग्रह होने के कारण, आर्य जाति में प्रसिद्ध वेद-नामधारी चार भागों में विभक्त अक्षर-समूह ही सब प्रकार से सर्वोच्च स्थान का अधिकारी है, समस्त जगत् का पूजार्ह है तथा आर्य एवं म्लेच्छ सबके धर्मग्रन्थों की प्रमाण भूमि है।

आर्य जाति द्वारा आविष्कृत उक्त वेद नामक शब्द-राशि के सम्बन्ध में यह भी जान लेना होगा कि उसका जो अंश लौकिक, अर्थवाद अथवा इतिहास सम्बन्धी बातों की विवेचना नहीं करता, वही अंश वेद है।

ये वेद ज्ञान-काण्ड और कर्मकाण्ड दो भागों में विभक्त हैं। कर्मकाण्ड में वर्णित क्रिया और उसके फल मायाधिकृत जगत् में ही सीमित होने के कारण, देश काल और पात्र के अधीन होकर परिवर्तित हुए हैं, होते हैं तथा होते रहेंगे। सामाजिक रीति-नीति भी इसी कर्मकाण्ड के ऊपर प्रतिष्ठित है; इसलिए समय-समय पर इसका भी परिवर्त्तन होता रहा है और होता रहेगा। लोकाचार यदि सत्शास्त्र और सदाचार के प्रतिकूल न हो, तो वह भी मान्य है। सत्शास्त्रनिन्दित

और सदाचार-विरोधी लोकाचार के अधीन हो जाना ही आर्य जाति के अधःपतन का एक प्रधान कारण है।

निष्काम कर्म, योग, भक्ति और ज्ञान की सहायता से मुक्ति दिलानेवाला होने के कारण, तथा मायारूपी समुद्र को पार कराने में नेता के पद पर प्रतिष्ठित और देश-काल पात्र आदि के द्वारा अप्रतिहत होने के कारण, ज्ञानकाण्ड अथवा वेदान्त भाग ही सार्वलौकिक एवं सार्वकालिक धर्म का एकमात्र उपदेष्टा है।

मन्वादि शास्त्रों ने कर्मकाण्ड का आश्रय ग्रहण कर देश-काल-पात्र भेद से मुख्यतः समाज को कल्याण करने वाले कर्मों की शिक्षा दी है। पुराणों ने वेदान्त के छिपे हुए तत्त्वों को प्रकाश में लाकर, अवतारादि महान् चरित्रों का वर्णन करते हुए इन तत्त्वों की विस्तृत व्याख्या की है, और उनमें से प्रत्येक ने अनन्त भावमय भगवान् के किसी एक भाव को प्रधान मानकर उसीका उपदेश दिया है।

किन्तु जब कालवश सदाचारभ्रष्ट, वैराग्यहीन, एकमात्र लोकाचारनिष्ठ और क्षीणबुद्धि आर्यसन्तान इन सब भावविशेषों की विशेष शिक्षा के लिए अवस्थित आपात विरोधी दिखनेवाले एवं अल्पबुद्धि मनुष्यों के लिए विस्तृत भाषा में स्थूल रूप से वैदान्तिक सूक्ष्म तत्त्वों का प्रचार करनेवाले इन पुराणादि तन्त्रों में वर्णित मर्मों को भी ग्रहण करने में असमर्थ हो गयी—और, इसके फलस्वरूप, जिस समय उसने अनन्त भाव-समष्टि अखण्ड सनातन धर्म को शत-शत खण्डों में विभक्त कर, साम्प्रदायिक ईर्ष्या और क्रोध की ज्वाला को प्रज्वलित कर उसमें परस्पर की आहुति देने की सतत् चेष्टा करते हुए इस धर्म-भूमि भारत को प्रायः नरक-भूमि में परिणत कर दिया,—उस समय, आर्य जाति का प्रकृत धर्म क्या है और सतत् विद्यमान आपात प्रतीयमान अनेकशः विभक्त, सर्वथा प्रतिद्वन्द्वी आचारयुक्त सम्प्रदायों से घिरे, स्वदेशियों का भ्रान्ति-स्थान एवं विदेशियों का घृणास्पद हिन्दू धर्म नामक युग-युगान्तर व्यापी विखण्डित एवं देश काल के योग से इधर-उधर बिखरे हुए धर्मखण्डसमष्टि के बीच यथार्थ एकता कहाँ है, यह दिखलाने के लिए तथा कालवश नष्ट इस सनातन धर्म का सार्वलौकिक, सार्वकालिक और सार्वदेशिक स्वरूप अपने जीवन में निहित कर, संसार के सम्मुख सनातन धर्म के सजीव उदाहरण स्वरूप अपने को प्रदर्शित करते हुए लोक-कल्याण के लिए श्री भगवान् रामकृष्ण अवतीर्ण हुए।

सृष्टि, स्थिति और लयकर्ता के अनादि वर्त्तमान सहयोगी शास्त्र संस्कार-रहित ऋषिहृदय में किस प्रकार प्रकाशित होते हैं, यह दिखलाने के लिए और इसलिए कि इस प्रकार से शास्त्रों के प्रमाणित होने पर धर्म का पुनरुद्धार, पुनः स्थापन और पुनः प्रचार होगा, वेदमूर्ति भगवान ने अपने इस नूतन रूप में बाह्य शिक्षा की प्रायः सम्पूर्ण रूप से उपेक्षा की है।

वेद अर्थात् प्रकृतधर्म की और ब्राह्मणत्व अर्थात् धर्मशिक्षा के तत्त्व की रक्षा के लिए भगवान् बारम्बार शरीर धारण करते हैं, यह तो स्मृति आदि में प्रसिद्ध ही है।

ऊपर से गिरनेवाली नदी की जलराशि अधिक वेगवती होती है; पुनरुत्थित तरंग अधिक ऊँची होती है। उसी प्रकार प्रत्येक पतन के बाद आर्य समाज भी श्री भगवान् के करुणापूर्ण नियन्त्रण में नीरोग होकर पूर्वापेक्षा अधिक यशस्वी और वीर्यवान हुआ है—इतिहास इस बात का साक्षी है।

प्रत्येक पतन के बाद पुनरुत्थित समाज अन्तर्निहित सनातन पूर्णत्व को और भी अधिक प्रकाशित करता है; और सर्वभूतों में अवस्थित अन्तर्यामी प्रभु भी अपने स्वरूप को प्रत्येक अवतार में अधिकाअधिक अभिव्यक्त करते हैं।

बार-बार यह भारतभूमि मूर्च्छापन्न अर्थात् धर्म-लुप्त हुई है और बारम्बार भारत के भगवान् ने अपने आविर्भाव द्वारा इसे पुनरुज्जीवित किया है।

किन्तु प्रस्तुत दो घड़ी में ही बीत जानेवाली वर्त्तमान गम्भीर विषाद-रात्रि के समान और किसी भी अमा-निशा ने अब तब इस पुण्यभूमि को आच्छन्न नहीं किया था। इस पतन की गहराई के सामने पहले के सब पतन गोष्पद के समान जान पड़ते हैं।

इसीलिए इस प्रबोधन की समुज्ज्वलता के सम्मुख पूर्व युग के समस्त उत्थान उसी प्रकार महिमाविहीन हो जायँगे, जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश के सामनें तारा-गण। और इस पुनरुत्थान के महावीर्य की तुलना में प्राचीन काल के समस्त उत्थान बाल-केलि से जान पड़ेंगे।

सनातन धर्म के समस्त भाव-समूह अपनी इस पतनावस्था में, अधिकारी के अभाव से, अब तक इधर-उधर छिन्न-भिन्न होकर पड़े रहे हैं—कुछ तो छोटे-छोटे सम्प्रदायों के रूप में और शेष सब लुप्तावस्था में।

किन्तु आज, इस नव उत्थान में नवीन बल से बली मानव-सन्तान, विखण्डित और बिखरी हुई अध्यात्म विद्या को एकत्र कर उसकी धारणा और अभ्यास करने में समर्थ होगी तथा लुप्त विद्या के भी पुनः आविष्कार में सक्षम होगी। इसके प्रथम निदर्शन स्वरूप परम कारुणिक श्री भगवान् पूर्व सभी युगों की अपेक्षा अधिक पूर्णता प्रदर्शित करते हुए, सर्वभाव-समन्वित एवं सर्वविद्यायुक्त होकर युगवातार के रूप में अवतीर्ण हुए हैं।

इसीलिए इस महायुग के उषाकाल में सभी भावों का मिलन प्रचारित हो रहा है, और यही असीम अनन्त भाव, जो सनातन शास्त्र और धर्म में निहित होते हुए भी अब तक छिपा हुआ था, पुनः आविष्कृत होकर उच्च स्वर से जनसमाज में उद्घोषित हो रहा है।

यह नव युगधर्म समस्त जगत् के लिए, विशेषतः भारत के लिए, महा कल्याण-कारी है; और इस युगधर्म के प्रवर्तक श्रीभगवान् रामकृष्ण पहले के समस्त युगधर्म प्रवर्तकों के पुनः संस्कृत प्रकाश हैं। हे मानव, इस पर विश्वास करो और इसे हृदय में धारण करो।

मृत व्यक्ति फिर से नहीं जीता। बीती हुई रात फिर से नहीं आती। विगत उच्छ्वास फिर नहीं लौटता। जीव दो बार एक ही देह धारण नहीं करता। हे मानव, मुर्दे की पूजा करने के बदले हम जीवित की पूजा के लिए तुम्हारा आह्वान करते हैं, बीती हुई बातों पर माथा-पच्ची करने के बदले हम तुम्हें प्रस्तुत प्रयत्न के लिए बुलाते हैं। मिटे हुए मार्ग के खोजने में व्यर्थ शक्ति क्षय करने के बदले अभी बनाये हुए प्रशस्त और सन्निकट पथ पर चलने के लिए आह्वान करते हैं। बुद्धिमान समझ लो!

जिस शक्ति के उन्मेष मात्र से दिग्दिगन्त व्यापी प्रति-ध्वनि जाग्रत हुई है, उसकी पूर्णावस्था को कल्पना से अनुभव करो; और व्यर्थ सन्देह, दुर्बलता और दास-जाति-सुलभ ईर्ष्या-द्वेष का परित्याग कर, इस महायुग-चक्र-परिवर्त्तन में सहायक बनो।

हम प्रभु के दास हैं, प्रभु के पुत्र हैं, प्रभु की लीला के सहायक हैं—यही विश्वास दृढ़ कर कार्यक्षेत्र में उतर पड़ो।

[अद्वैत आश्रम, कलकत्ता से प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य, दशम खण्ड से साभार—सं०]

श्रीरामकृष्णदेव के संस्मरण

[उद्बोधन कार्यालय, कलकत्ता, द्वारा प्रकाशित 'सत् कथा' नामक पुस्तक से साभार संकलित एवं अनूदित। अनुवादक हैं, रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची के ब्रह्मचारी शम्भुचैतन्य जी महाराज।—सं०]

ठाकुर, (श्रीरामकृष्णदेव) मुझे और राखाल महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्दजी) को भिक्षाटन करने के लिए कहते थे। प्रायः ही बोलते—"भिक्षा का अन्न बहुत पवित्र होता है।" मैं और राखाल महाराज एकदिन भिक्षाटन के लिए गये थे। जाते समय ठाकुर बोल दिये—"कोई गाली देगा, कोई आशीर्वाद करेगा, कोई पैसा देगा, तुमलोग सब स्वीकार करना।" पहले तो एक व्यक्ति हमलोगों को भीख माँगते देखकर फटकारने लगा और बोला—"ऐसे हट्टे-कट्टे जवान लड़के होकर भीख माँगते हो? काम करके नहीं खा सकते?" राखाल महाराज डर गये। मैंने कहा—"ठाकुर ने तो पहले ही ये सब बातें बता दी हैं, डरते क्यों हो?" उसके बाद एक स्त्री ने हमलोगों को देखकर कहा—"बेटा, तुमलोग किस दुःख से भीख माँग रहे हो? तुमलोगों को किस बात का अभाव है?" हमलोगों ने सबकुछ बताया। तब उसने खुश होकर एक पैसा दिया एवं सूर्यनारायण की ओर देखते हुए हमलोगों को बहुत आशीर्वाद देते हुए बोली—"जिस कारण तुमलोगों ने संसार छोड़ा है, भगवान् तुमलोगों की वह मनोकामना पूर्ण करें।" कई लोगों ने चावल तथा पैसे दिये। हमलोगों ने ये सब लाकर ठाकुर को दिया। ठाकुर ने पूछा—"किस प्रकार भिक्षाटन किया?" हमलोगों ने तब सब कुछ बताया। उस स्त्री के बारे में सुनकर उन्होने कहा—"ठीक कहा, देखो मेरे साथ सूर्यनारायण का योग है। एकदिन सिर में बहुत दर्द हो रहा था, अचानक एक आदमी आकर 'तुम्हारी यह सिर की बीमारी नहीं है। सूर्यनारायण के साथ तुम्हारा योग है।'—बोलकर ही चला गया। तब मैंने हृदय को कहा—"देख तो, वह आदमी कहाँ गया?" हृदय फाटक तक जाकर वापस लौटकर बोला—"दिखायी नहीं पड़ा।" उसके बाद ठाकुर ने कहा—"ये सब दैवी घटनायें हैं।" ठाकुर ने विवेकानन्द भाई को और भवनाथ को खाना पकाने के लिए कहा, उस दिन रविवार था। ठाकुर खड़े-खड़े देखने लगे, बहुत खुश थे। जब खाना तैयार हो गया और पंगत बैठनेवाली ही थी, उसी समय एक बाउल आकर उपस्थित हुआ। ठाकुर ने कहा—"अभी खाना नहीं मिलेगा। यदि बचेगा, तो बाद में मिलेगा। बाउल गुस्सा होकर चला गया। विवेकानन्द भाई के मन में हो रहा है—"कई चीजें पक रही हैं, खाने क्यों नहीं दिया? कैसे कंजूस हैं?" ठाकुर ने कहा—"वह बाउल है, कितना कुछ किया है। उसने ऐसा क्या काम किया है जो तुम्हारे साथ बैठकर खाएगा? तुमलोग सब शुद्ध पवित्रात्मा हो, उसके साथ कैसे खाओगे! तब विवेकानन्द भाई ने समझा कि ठाकुर ने क्यों उसे मना किया था। तब हमलोगों ने संगदोष का अर्थ समझा। साधक अवस्था में जिस-तिस के साथ मिलना-जुलना, खाना-पीना ठीक नहीं है, भाव की हानि होती है। वे इन सब विषयों में बहुत नियम मानकर चलते थे एवं हमलोगों को उन्होंने सतर्क कर दिया था।

ठाकुर योगीन (स्वामी योगानन्दजी) को प्रतिदिन माँ काली का प्रसादी फल रख देने को बोलते। योगीन ने सोचा—"जो भी हो, आखिरकार तो भट्टाचार्य

ब्राह्मण ठहरे, संस्कार कहाँ जायेंगे ? फल-मूल की माया छोड़ नहीं पाये। जैसे ही योगीन के मन में ऐसी बात उठी, ठाकुर ने कहा—"पुजारी लोग अविद्या स्त्रियों के लिए ये सब ले जाते हैं, तुमलोग खाओगे तब कुछ सार्थक होगा।" योगीन के मन में अफसोस हुआ, यह मैंने क्या किया, नाहक ही इनके ऊपर संशय किया, वे तो हमारे लिए ही प्रसाद रखने को बोलते है।

ठाकुर के समान गुरु मिलना दुर्लभ नहीं तो और क्या ? वे बोलते—"तुमलोग कितने बड़े बनोगे, बनो न ! बहुत बड़े होगे तो एक अवतार के समान बड़े बनो। और कितने बड़े बनोगे ? उनकी बहुत कृपा थी, वे जोर देकर कहते थे—"विवाह हरगिज न करना। विवाह न करने से एक-न-एक दिन धर्म को समझ सकोगे। धार्मिक प्रवृत्ति वालों को वे बहुत प्रेम करते थे, और गरीबों को देखते ही खाने को देते थे।

वे तो 'कामिनी-कांचन' त्यागी थे, किन्तु एक दियासलाई भी अधिक खर्च करने से वे कितना डाँटते थे यह तुमलोग कैसे समझोगे ? तम्बाकू खाते समय दियासलाई जलाने से फटकारते तथा कहते—"रसोई बन रही है, आग ले आओ, आलस्य क्यों करते हो ?आलस्य से क्या धर्म होता है ? आलसी को किसी काल में धर्म नहीं होता। विवेकानन्द भाई बढ़िया ढंग से कहता—"कर्म में आलसी, भोजन में तामसी, शब्दराशि सब आग-सी।" सिर्फ लम्बी-लम्बी बातें, काम के समय कुछ नहीं, फिर धर्मलाभ करने आये हैं ! धर्मलाभ इतना सहज है, रे ?

किसी के क्रोधित होने पर ठाकुर बोलते—"उसको छूना मत। उसने चाण्डाल को स्पर्श किया है। चाण्डाल को छूने से जैसे अस्पृश्य होता है—क्रोध के वशीभूत होने पर आदमी वैसा ही बन जाता है।

वे (श्रीरामकृष्ण) कहते—"विवाह करके क्या पाप किया है, भय क्या है रे ? मैं जो हूँ, मेरी कृपा रहने पर कोई डर नहीं है, फिर भी विवाह करके मुग्ध हो जाना खराब है।"

हरिनाम करने से परमहंसदेव कितना खुश होते थे, यह कहकर समझाना कठिन है। एकदिन कुछ लोग हरिनाम करते-करते तन्मय होकर पड़े हुए थे। हरिनाम के बाद उठकर उन्होंने देखा, परमहंसदेव पंखा लेकर हवा कर रहे हैं। वे सबलोग बोले—"महाशय, यह क्या कर रहे हैं, यह क्या कर रहे हैं ?" परमहंसदेव बोले—"आहा ! तुमलोगों ने इतना परिश्रम किया—हरिनाम लिया, और मैं पंखे से थोड़ी हवा नहीं कर सकता ?"

हमलोगों के ठाकुर बहुत गरीब थे। एकदिन ठाकुर को बहुत भूख लग गयी। ठाकुर रामलालदादा की माँ को बोले—"रामलाल की माँ, देखो तो घर में क्या है ? मुझे बहुत भूख लगी हैं।" रामलालदादा की माँ बोली—"देवरजी, घर में तो कुछ भी नहीं है, केवल बासी भात और प्याज हैं। ठाकुर ने खुश होकर यही खाया। देखो, जिन्हें भगवान मानकर पूजा करते हैं, उन्होंने ही बासी भात और प्याज खाया।

ठाकुर अपने शिष्यों को रात में कम खाने को कहते। रात में अधिक खाने से जप-ध्यान कैसे करेंगे ? अधिक खाने से ही नींद आयेगी। वे कहते—"दिन में ठूँसकर खाना चाहिए और रात में सामान्य।"

वे (श्रीरामकृष्ण) अवतार हैं ऐसा स्वामी विवेकानन्द स्वयं कहकर गये हैं, मैं और क्या कहूँगा ? वे ही मेरे गुरु और पिता हैं। स्वामी विवेकानन्द ने ही उन्हें समझा था—वे कौन हैं। मैं उनके बारे में क्या जानता हूँ, क्या समझता हूँ, जो कुछ बोलूँगा ? वे स्वामी विवेकानन्द को अपने प्रचार के लिए लाये थे, एवं उन्होंने ही उन्हें शक्ति दी थी, तभी तो स्वामी विवेकानन्द उनका प्रचार कर पाये थे। जो भी उन्हें कायमनोवाक्य से पुकारेगा, उन पर वे अवश्य कृपा करेंगे, जोर देकर यह बात मैं कहता हूँ।

परिष्कार-परिच्छन्न रहने से ठाकुर कितना खुश होते थे, यह कहा नहीं जा सकता। वे गन्दगी पसन्द नहीं करते थे। भीतर तथा बाहर स्वच्छ रहना बहुत आवश्यक है।

ठाकुर ने एक आदमी से पूछा—"तुम्हारी क्या साध हैं ?" वह बोला—"एक पुत्र हो—ऐसी कृपा कीजिए।" तब ठाकुर बोले—"धत् रे साले, इतने सन्देश-रसगुल्ले खिलाये, सब व्यर्थ चला गया।" देखो माया का खेल। इतनी धर्म-कथा सुनने के बाद भी उसे चैतन्य नहीं हुआ।

ठाकुर ऋण लेने से निषेध करते थे। जो, जमीन्दारी बिक्री करता है, उसे भाग्यहीन कहते थे। जमीन-जायदाद जब देखनी ही होगी, तो छाती पर घुटना रखकर हिसाब-किताब समझ लेना होगा। जिसके पास है, उसे छोड़ोगे क्यों ? जिसके पास यथार्थ ही कुछ नहीं है, उसे छोड़ना उचित है।

ठाकुर कहते थे—"तैयार खाना मत छोड़ो।" तैयार खाना छोड़ने से अकल्याण होता है, और ऐसा भी हो सकता है कि उस दिन फिर खाना हुआ ही नहीं। जैसा भी खाना हो—अच्छे-बुरे की ओर दृष्टि न रखकर शांति से खाना। उस प्रकार तृप्ति के साथ खाने से शरीर स्वस्थ रहता है, मन भी पवित्र होता है। जो कुछ भी खाओ—सब इष्टदेवता को अर्पण करके खाओ। यदि कोई दोष रहा तो इष्ट को अर्पण करने से दूर हो जाता है।

अपना सगा भाई इहकाल का और गुरुभाई इहकाल तथा परलोक दोनों का होता है। यह कैसा सम्बन्ध होता है, उसे मुख से नहीं कहा जा सकता। ठाकुर कहते थे—"रक्त के आकर्षण से भक्त का आकर्षण अधिक होता है।"

ठाकुर के चले जाने के बाद किसी ने कहा—"ठाकुर मुझे अधिक चाहते थे।" अन्य किसी ने कहा—"मुझे अधिक" इस प्रकार बीच-बीच में झगड़ा होता था। ठाकुर सभी को इतना प्रेम करते थे कि प्रत्येक व्यक्ति सोचता था, उसे ही सबसे अधिक प्रेम करते थे। एकदिन मैंने ऐसा झगड़ा देखकर कहा—"ठाकुर कुछ भी रख नहीं गये, फिर भी तुमलोग झगड़ा कर रहे हो, और यदि कुछ रख जाते तब तो तुमलोग निश्चित ही मुकदमा लड़ते।

मैं ठाकुर के पैर दबा रहा था। सोच रहा था—तीर्थभ्रमण करने जाऊँगा, क्योंकि सुना था कि तीर्थदर्शन करने से पुण्य होता है। ठाकुर मन की बात जानकर बोले—"यहाँ से जाना मत, यहीं पर सबकुछ है, कहाँ इधर-उधर भटकोगे। और यहाँ कुछ खाना भी जुट जाता है, इसे छोड़ जाओ मत।" ठाकुर की अहैतुक कृपा। मैं फिर नहीं गया।

एक दिन काली बाड़ी के एक नौकर ने तम्बाकू पीकर हुक्का रखा और दौड़कर उस हुक्के से दम लिया। इसी के साथ कालीबाड़ी के ब्राह्मण लोग बोल उठे—"छोटे भट्टाचार्य की जाति चली गयी है, अब हम उसके साथ बैठकर नहीं खायेंगे।" ठाकुर कहने लगे—"आह ! बच गया। इन लोगों के साथ बैठकर खाने से बच गया।"

राखाल महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्दजी) को घर से आने पर ठाकुर बोलते थे—"जा, पहले एकबार कुछ गंगाजल पीकर आ, उसके बाद मेरे पास आना। अनेक दिन विषयी का अन्न खाया है तो !"

★

रामचरितमानस और कल्पतरु

—स्वामी शशांकानन्द
बेलुड़ मठ

[१ जनवरी १९८३ को रामकृष्ण मठ ; काशीपुर उद्यानबाटी में कल्पतरु उत्सव पर स्वामी शशांकानन्दजी द्वारा दिये गये प्रवचन का सार। श्रीरामकृष्ण देव के सम्बन्ध में उद्धृत दोहे और चौपाइयाँ स्वामी शशांकानन्दजी द्वारा ही रचित हैं।—सं०]

रामचरित मानस में 'कल्पतरु' शब्द का प्रयोग बहुत बार किया गया है। लंका-काण्ड के आरंभ में स्तुति करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है, "भगवान् शंकर जो 'कल्याण कल्पद्रुम' हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

माता पार्वती भी भगवान् शंकर को 'कल्पतरु' नाम से सम्बोधित करते हुए प्रणाम् करती हैं।

प्रभु समरथ सर्वग्य शिव सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान वैराग्य निधि प्रनत कल्पतरु नाम॥

तथा पूर्ण विश्वास के साथ अपनी मनोकामना पूर्ण करने के लिए इस कल्पतरु से प्रार्थना भी करती हैं।

जासु भवन सुरतरु तर होई।
सहि कि दरिद्र जनित सुख सोई॥
ससि भूषण अस हृदयँ विचारी।
हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी॥

—'जिसका घर कल्पतरु वृक्ष के नीचे हो, वह भला दरिद्रता से उत्पन्न दुःख क्यों सहेगा? हे शशि-भूषण! हे नाथ! हृदय में ऐसा विचार कर मेरी बुद्धि के भारी भ्रम को दूर कीजिए।'

अन्यत्र गोस्वामी ने 'रामनाम' को कल्पतरु कहा है।

नामु राम को कल्पतरु कलि कल्याण निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥

—'कलियुग में राम का नाम कल्पतरु और कल्याण का निवास है, जिसके स्मरण करने से भांग-सा (निकृष्ट) तुलसीदास तुलसी के समान पवित्र हो गया।'

नाम कामतरु काल कराला।
सुमिरत समन सकल जगजाला॥

—'ऐसे कराल कलियुग में तो नाम ही कल्पवृक्ष है जो स्मरण करते ही संसार के सब जंजालों का नाश कर देने वाला है।

किन्तु 'कल्याण निवासु' होने के कारण यह कल्पवृक्ष कभी अकल्याण नहीं करता। वह तो इस लोक में और परलोक में कल्याण करने वाली मनोकामनाओं की ही पूर्ति करता है। इसलिए गोस्वामी जी कहते हैं, 'राम नाम कलि अभिमत दाता' 'राम नाम कलियुग में मनोवाञ्छित फल देने वाला है।' किन्तु इसके साथ-साथ वे कहते हैं, 'हित परलोक लोक पितु माता।' माता-पिता बच्चे की केवल उन इच्छाओं की ही पूर्ति करते हैं जिनके द्वारा उसकी क्षति न हो बल्कि मंगल ही हो। यदि कोई बच्चा अग्नि पकड़ने की इच्छा करे तथा जिद्द कर बैठे तो क्या कोई माता-पिता उसे ऐसा करने देंगे? कभी नहीं। क्योंकि वे जानते हैं कि ऐसा करने से बच्चे का हाथ जल जायगा। ठीक इसी प्रकार भगवन्नाम रूपी कल्पवृक्ष भक्त की उन्हीं कामनाओं की ही पूर्ति करता है जिनसे भक्त का मङ्गल हो—वह भक्ति-मुक्ति पा सके।

गोस्वामी जी ने रामकथा को भी कल्पवृक्ष के समान बताया है, 'अभिमत दानि देव तरुबर से' (राम कथा) मनोवाञ्छित वस्तु देने में श्रेष्ठ कल्पतरु के समान है। यह तो परम कल्याणकारी फल प्रदान करता है :

राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्वाण।

भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान ॥

आइये, अब देखें गोस्वामी जी ने भगवान् राम को कल्पवृक्ष किस प्रकार कहा है। कल्पवृक्ष के समान आनन्दकंद भगवान् श्रीराम जब से चित्रकूट में आए वह मानो नन्दनवन ही बन गया। देवता, नाग, किन्नर, दिग्पाल चित्रकूट में आकर प्रभु का दर्शन कर आनन्दित हुए। मुनि-मण्डली श्रीराम को अपने हृदय से लगा लेते हैं तथा लक्ष्मण जी और माता जानकी सहित दर्शन कर अपने साधनों को सफल हुआ जानते हैं। कोल-भील आदि समाचार पाकर ऐसे हर्षित हुए मानो नवों निधियाँ उनके घर पर ही आ गयी हों। वे दोनों में कन्द-मूल, फल भर-भर कर चले मानों दरिद्र सोना लूटने जा रहा हो। सामने भेंट रखकर वे लोग जोहार करते हैं, प्रभ को नेत्र भरकर देखते हैं तथा मुग्ध हो जाते हैं। वन में विचरने वाले पक्षी, पशु धन्य होते हैं —उनका जन्म सफल हो गया। पृथ्वी, वन, मार्ग, पर्वत धन्य हो गए। भगवान् राम ने जड़-चेतन सभी की मनोकामनाएँ पूर्ण कीं। इसलिए गोस्वामी जी भगवान् राम को कल्पतरु कहते हैं।

सुरतरु सरिस सुभायँ सुहाए।

मनहुँ बिबुध बन परिहरि आए ॥

—वे कल्पवृक्ष के समान स्वाभाविक ही सुंदर हैं। मानो वे देवताओं के वन (नन्दन-वन) को छोड़कर ही आए हों।

रामचरित मानस में भरत जी ने भी भगवान् राम को कल्पवृक्ष की उपमा दी है। वे श्रीराम से कहते हैं,

देउ देवतरू सरिस सुभाऊ।

सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ ॥

—'हे देव आपका स्वभाव कल्पवृक्ष के समान है; वह न कभी किसी के सन्मुख (अनुकूल) है, न विमुख (प्रतिकुल) है।' अर्थात् उसके पास जो कुछ भी कामना लेकर जाता है, वह बिना भेद-भाव के उसे ही पूर्ण कर देता है।

वृक्ष तो सभी एक समान लगते हैं। जिस किसी वृक्ष के पास जाने से काम न बनेगा। असली कल्पवृक्ष को पहचान कर उसके पास जाने से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। गोस्वामी जी कहते हैं :

जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समनि सब सोच।

मागत अभिमत पाव जग राउ रंकु भल पोच ॥

—'उस कल्पवृक्ष को पहचान कर जो उसके पास जाए, तो उसकी छाया ही सारी चिन्ताओं का नाश करने वाली है। राजा-रंक, भले-बुरे जगत् में सभी उससे माँगते ही मनचाही वस्तु पाते हैं।'

राजा मनु और रंक भिलनी, भरत, सुतीक्ष्ण, शरभंग, हनुमान जैसे भक्तगण तथा रावण और उसकी असुर-सेना सभी ने कल्पतरु से मनोवाञ्छित फल पाया था।

यदि कल्पवृक्ष को न पहचान कर उसके पास जाएँ तो या तो राजा प्रताप भानु की तरह हम एक साधारण वृक्ष को कल्पतरु जानकर विपद-ग्रस्त हो जाएँगे अन्यथा माया-ग्रसित नारद जी की भाँति कल्पवृक्ष को तुच्छ वृक्ष मानकर निरर्थक तुच्छ इच्छाओं की पूर्ति की कामना कर बैठेंगे।

शिकार करते-करते वन में रास्ता भूलकर प्यास से व्याकुल राजा प्रताप भानु कपटी मुनि के वेश में अपने ही एक शत्रु कि कुटिया में जा पहुँचे। 'राउ तृषित नहिं सो पहिचाना' प्यास के कारण राजा उसे पहचान न पाए। और उन्हें एक सच्चा मुनि जानकर कहा,

मोहि मुनीस सुत सेवक जानी।

नाथ नाम निज कहहु बखानी ॥

और जब कपटी मुनि ने प्रसन्न होकर कहा

अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं ।
मागु जो भूप भाव मन माहीं ।।

तब तो राजा प्रताप भानु को ऐसा लगा मानो वह एक कल्पवृक्ष के तले बैठा है, अतः उसने इस नकली कल्पतरु से तुरंत यह माँगा,

जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ ।
एक छत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ ।।

नकली कल्पवृक्ष ने भी तुरंत कहा

कह तापस नृप ऐसेइ होउ ।
कारन एक कठिन सुनु सोउ ।।

'एवमस्तु' तो कह दिया किन्तु एक शर्त लगा दी । बस जहाँ शर्त लगी, समझ लीजिए दाल में काला है । असली कल्पवृक्ष तो बिना शर्त के ही मनोवाञ्छित फल देता है । अतः नकली कल्पवृक्ष के पास बिना पहचाने जाने से परिणाम क्या हुआ ?

सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा ।

इधर नारद जी ने भगवान की माया से मोहित होकर जब मायारचित नगर में प्रवेश किया और राजकुमारी के रूप को देखकर उसे प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो उठे । और उन्होंने जब राजकुमारी की हस्तरेखा देखकर यह जाना कि इसका विवाह तो विष्णु के समान गुण वाले व्यक्ति से होगा तो भगवान विष्णु के पास जा पहुँचे और कहा,

आपन रूप देहु प्रभु मोही ।
आन भाँति नहिं पावौं ओही ।।

—'हे प्रभु आप अपना रूप मुझे दे दीजिए और किसी प्रकार से मैं उस कन्या को नहीं पा सकता ।

कल्पतरु भगवान ने देखा यह वर देने से तो सर्वनाश हो जाएगा । भक्त इस समय मोहान्ध हो चुका है । अतः चुप रहे । नारद जी बोलते गए ।

जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा ।
करहु सो बेगि दास मैं तोरा ।।

बस इतना सुनते ही भगवान ने कहा

जेहि बिधि होइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार ।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार ।।

यद्यपि नारद जी ने कल्पतरु के पास मोहवश उसे पहचान कर एक तुच्छ याचना की थी तथापि वे मनोवाञ्छित फल न पा सके एवं स्वयं छोटे हो गए । प्रभु ने उन्हें बन्दर का मुख दे दिया ।

किन्तु राजा मनु और शतरूपा कल्पवृक्ष को पहचान कर ही उसके पास गए थे इसलिए उन्हें सब कुछ प्राप्त हुआ ।

राजा मनु और शतरूपा ने जब कठोर तपस्या की तो भगवान ने अमृतयी आकाशवाणी की 'वर माँगो', तो मनु जी ने कहा, "मैं पहचानता हूँ प्रभु"

'सुन सेवक सुरतरु सुरधेनु'

—'आप सेवक के लिए कल्पतरु एवं कामधेनु हैं ।' ऐसा जानकर मैं निःसंकोच वर माँगता हूँ' :

जो सरूप बस सिव मन माहीं ।
जेहि कारण मुनि जतन कराहीं ।।
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन ।

—'जो दिव्यस्वरूप भगवान शंकर के मन में बसा हुआ है, जिसको प्राप्त करने के लिए मुनि जन यत्न करते हैं, उसी (राम) रूप को हम नेत्र भरकर देखना चाहते हैं ।

कहने भर की देर थी कि भगवान श्रीराम-रूप में प्रकट हो गए,

कटि निषंग कर सर कोदंडा ।।

—'कमर में तरकस और हाथ में धनुष-बाण लिए' भगवान राम प्रकट हो गए । और

राम बाम दिसि सीता सोई

उनके बाम अङ्ग में श्री जानकी जी विराजमान हैं । प्रभु ने कहा 'और वर माँगो' । मनु जी कहते हैं, उन्हें बड़ा संकोच हो रहा था ।

जथा दरिद्र बिबुध तरु पाई।
बहु संपति माँगत सकुचाई।।

मनु जी की दशा इस प्रकार हो गयी जैसे कोई दरिद्र कल्पतरु पाकर अधिक संपति माँगने में संकोच करता है। भगवान ने कहा, तुमने ठीक ही पहचाना है। मैं कल्पतरु हूँ, परन्तु तुम संकोच न करो। क्यों कि मेरे लिए कुछ भी अदेय नहीं है।

सकुच बिहाइ माँगु नृप मोही।
मोरे नहि अदेय कछु तोही।।

राजा मनु ने कहा :

दानिसिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सति भाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ।।

जब आप कहते हैं कि आपके लिए कुछ भी अदेय नहीं है, तब हे दानिशिरोमणि, कृपा के समुद्र, आप से क्या छिपाव करूँ, मुझे आपके समान पुत्र चाहिए। भगवान् ने कहा, 'एवमस्तु', ऐसा ही हो। रानी शतरूपा को तो उन्होंने कोरे कागज पर लिख दिया (Blank Cheque)—

जो कुछ रुचि तुम्हरे मन माहीं।
मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं।।

—'जो कुछ इच्छाएँ तुम्हारे मन में हैं (मुख से बिना कहे ही) मैंने सब पूर्ण कर दीं, इसमें कोई सन्देह नहीं।'

क्योंकि मनु-शतरूपा कल्पतरु राम को पहचान कर ही उनके पास गए, इसीलिए उनकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हुईं, सब दुःख दूर हो गए; परमानन्द की प्राप्ति हुई। वे राजा दशरथ और कौशल्या के रूप में जन्मे तथा उन्होंने भगवान् राम को पुत्र रूप में प्राप्त किया।

जीवों के जन्म-जन्मान्तर की मनोकामनाओं को पूर्ण करने के लिए ही प्रभु मनुष्य शरीर धारण करते हैं। गोस्वामी जी कहते हैं :

जब जब होइ धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी।
सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।
तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

अन्तिम पंक्ति बड़ी ही मार्मिक है। बिरले सज्जन ही प्रभु को नर-रूप में पहचान पाते हैं। उन्हें ईश्वर-भाव से पहचान कर जो उनके पास जाते हैं उनकी पीड़ा भगवान् हरते हैं अर्थात् उनकी जन्म-जन्मान्तर की पिपासा शान्तकर उन्हें अपने स्वरूप की पहचान कराकर मुक्त कर देते हैं।

अवतार लीला करते हुए भगवान् एकदम साधारण मनुष्य की भाँति आचरण करते हैं, जैसे श्रीराम का माता जानकी के लिए विलाप, श्री कृष्ण का साधारण ग्वाल-बालों के समान आचरण, श्रीरामकृष्ण का उनके भतीजे की मृत्यु पर शोक एवं अपना हाथ टूटने पर चिंता इत्यादि। साधारण मनुष्य तो क्या ब्रह्मादि भी चक्कर खा जाते हैं। केवल अपने अनन्य भक्तों के सामने—सज्जन व्यक्तियों के सामने—ही वे अपने ईश्वर-भाव को प्रकट करते हैं।

जो ईश्वरावतार को साधारण मनुष्य मानते हैं वे कल्पतरु को नहीं पहचानते और वे मूढ़ जन्म-मरण के चक्कर में पड़े रहते हैं।

अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूत महेश्वरम्।।

किन्तु कुछ व्यक्ति हैं जो न तो अविश्वास कर पाते हैं और न विश्वास ही। ऐसे संशययुक्त व्यक्ति पहचान करने की चेष्टा करते हैं। इसलिए वे तरु-विशेषज्ञ की शरण में जाकर पूछते हैं, "प्रभु, जरा असली कल्पतरु की पहचान करा दीजिए।" जैसे भरद्वाज ऋषि ने याज्ञवल्क जी से पूछा, 'राम कवन प्रभु पूछउँ तोही।' याज्ञवल्क्य जी ने कहा, "क्या तुम राम को नहीं

जानते ? भरद्वाज जी पुनः बोले "हाँ, मैंने राम के बारे में अवश्य सुना है—

एक राम अवधेस कुमारा ।
तिन्हकर चरित विदित संसारा ।।
नारि विरह दुःख भयउ अपारा ।
भयउ रोष रन रावनु मारा ।।

किन्तु क्या इसी राम की चर्चा आप करते हैं ?

'प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि'

क्या भगवान् शंकर इसी राम के नाम का जप करते हैं या अन्य किसी राम के नाम का ?

माँ जगदम्बा ने तो और भी स्पष्ट रूप में भगवान् शंकर से प्रश्न किया :

जौं नृपतनय त ब्रह्म किमि नारि विरह मति भोरि ।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमत बुद्धि मति मोरि ।।

—'नारी-विरह से व्याकुल राजा के पुत्र यदि हों तो वे ब्रह्म (शोक-मोह-रहित अजन्मा) किस प्रकार से हो सकते हैं ? यह चरित्र देखकर अथवा महिमा सुनकर मेरी बुद्धि भ्रमित हो गयी है ।

इसके उत्तर में गोस्वामी जी भगवान् राम की अलौकिक लीलाओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्रीराम साधारण मनुष्य नहीं हैं, वे तो मनुष्य रूप में परब्रह्म ही अवतरित हुए हैं ।

ग्यान गिरा गोतीत अज माया गुन गो पार ।
सोई सच्चिदानन्द घन कर नर चरित उदार ।।

राम साच्चिदानन्द दिनेसा ।
नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ।

किन्तु साधारण मनुष्य की भाँति जो उनके आचरण हैं, वे लीला मात्र हैं । भगवान् के जन्म-कर्म दिव्य हैं क्योंकि वे साधारण मनुष्य की भाँति नहीं जन्मे हैं— 'प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्म मायया' ।

—'अपनी त्रिगुणात्मिका माया को वश में रखकर अपनी लीला से ही शरीर धारण करता-सा, जन्म लेता-सा प्रतीत होता हूँ ।' अतः भगवान् के साधारण मनुष्य की भाँति आचरण तो लोक संग्रहार्थ उनकी लीला मात्र हैं । इससे प्रभु की महिमा कम नहीं होती । इसका एक सुन्दर दृष्टान्त गोस्वामी जी ने रामचरित मानस में दिया है :

जथा अनेक वेष धरि नृत्य करइ नट कोइ ।
सोइ सोइ भाव देखावई आपनु होइ न सोइ ।।

—'जिस प्रकार से कोई नट अनेक वेष धर कर नाटक करता है, जब जिस चरित्र का अभिनय करता है तब वैसा ही भाव दिखाता है, किन्तु स्वयं अपना व्यक्तित्व नहीं खो बैठता अर्थात् उसके व्यक्तिगत जीवन में उस चरित्र से कोई सम्बन्ध नहीं होता ।

अतः जब भगवान् कल्पतरु बन कर नर-वेष धारण करके इस धरा धाम पर आते हैं तो यद्यपि बाहर से साधारण मनुष्य ही प्रतीत होते हैं, किन्तु उनके ईश्वर भाव को पहचान कर हम जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं ।

कल्पतरु श्रीरामकृष्ण

उसी कल्पतरु का पुनः प्राकट्य हुआ था १९वीं शताब्दी में । आशुतोष भगवान् शंकर तथा विष्णु अवतार भगवान् राम— इन दोनों की ही हमने कल्पतरु के रूप में आलोचना की है । इस कलियुग में वही आशुतोष भगवान् शंकर कामारपुकुर में युगियों के मन्दिर में प्रतिष्ठित शिव-लिङ्ग से प्रकाशित हो कर माता चन्द्रामणि देवी के गर्भ में प्रविष्ट कर गये थे तथा गयाधाम में पिता क्षुधिराम पर प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने उनके पुत्र-रूप में जन्म लेने का आश्वासन दिया था । अतः इस बार भगवान् शिव तथा विष्णु (राम) ने एक ही शरीर में अवतरित होकर भगवान् श्रीरामकृष्ण का रूप धारण किया था । इस बार भी उन्होंने प्रमाणित कर दिया था कि वे भक्तों के लिए कल्पतरु हैं । इसीलिए श्री अक्षय कुमार सेन ने "श्री श्री रामकृष्ण पूँथि (बँगला)" ग्रन्थ में उनकी वन्दना करते हुए कहा है,

"जय जय रामकृष्ण वाञ्छाकल्पतरु"

श्री युत् गिरीशचन्द्र घोष महाशय ने भगवान् के इस अवतार-तत्त्व को जाना था और उन्हें उसपर पूर्ण विश्वास था। श्रीरामकृष्णदेव स्वयं उनकी प्रशंसा करते हुए कहते थे, 'गिरीश का पाँच चवन्नी पाँच आने विश्वास है। कुछ दिन बाद उसकी अवस्था देखकर लोग अवाक् हो जायेंगे।'

गिरीशचन्द्र सदैव भगवान श्रीरामकृष्ण देव को जीवोद्धार के निमित्त करुणा प्रवाहित करने के लिए अवतरित साक्षात् परब्रह्म के रूप में ही जानते थे। इतना ही नहीं, अपने दृढ़ विश्वास के बल पर दूसरों के समक्ष यह तत्व प्रकट भी करते थे।

दिव्य जन्म एवं कर्म का रहस्य समझना खूब सरल नहीं है। साधना, पुरुषार्थ, त्याग तपस्या किसी से भी वह खरीदा नहीं जा सकता। प्रभु श्रीरामकृष्ण देव ने अनुग्रह करके गिरीश के सरल विश्वास तथा प्रबल अनुराग को देखकर ही उनके सामने आत्मप्रकाश किया था। 'सोइ जानत जेहि देहु जनाई।'

भगवान श्रीरामकृष्ण देव के जीवन में भी, अन्यान्य अवतारों की भाँति, बीच-बीच में जीव-भाव विलीन होकर, अंश-अंशी भाव छोड़कर विश्व-व्यापी ईश्वर भाव अभिव्यक्त हो जाता था और उस स्थिति में वे कल्पतरु के सदृश रूप धारण कर स्वयं आत्मपरिचय देकर मानो कह उठते, 'तू क्या चाहता है? मानो भक्तों की माँगों को तत्क्षण ही वे अलौकिक शक्ति के प्रभाव से पूर्ण करने के लिए तत्पर थे।

१ जनवरी १८८६

पहली जनवरी १८८६ ई० का दिन तो आध्यात्मिक जगत में एक महान दिवस था जब प्रभु कल्पतरु का रूप धारण कर भक्तों के समाने सारा रहस्य खोल बैठे थे।

किन्तु क्या यह कल्पतरु बुरी-भली सभी कामनाओं की पूर्ति करने के लिए उद्यत हुआ था! क्योंकि जन-श्रुति के अनुसार तो कल्पतरु ऐसा ही होना चाहिए। हम आगे ही कह चुके हैं कि यह कल्पतरु तो 'कल्याण कल्पद्रुम' है। और इसके सामने तो कोई बुरी कामनाएँ ठहर ही नहीं सकतीं। जब रावण को सलाह दी गयी कि वे सीता जी के पास रामरूप धर कर क्यों नहीं जाते तो उन्होंने कहा था, 'रामरूप धारण करने के लिए श्रीराम का ध्यान करना होगा और श्रीराम का ध्यान होने पर असंख्य सीताओं के प्रति भी मन आकर्षित न होगा।'

गोस्वामी जी ने भी मानस में कहा है:

जहाँ काम तहँ राम नहिं जहाँ राम नहिं काम।
तुलसी कबहुँक ह्वै सकैं, रवि रजनी इकठाम॥

अतः भगवान् के पास प्रार्थी जब उन्हें पहचान कर जाता है तो भला उसके हृदय में बुरी कामना उदित ही कैसे हो सकती है।

आइए। हम अपने प्रसङ्ग पर लौट आएँ। समय दिन के तीन बजे होगे। स्थान काशीपुर उद्यानवाटी। प्रभु श्रीरामकृष्ण देव आहिस्ता-आहिस्ता उद्यान भवन की सीढ़ी से नीचे उतरे तथा नीचे के बड़े हॉल को देखकर बाहर बगीचे में टहलने लगे। उपस्थित भक्त-गण प्रभु के पीछे-पीछे चलने लगे। श्रीरामकृष्ण देव ने जैसे ही गिरीश को देखा उन्हें उसके अटूट एवं दृढ़ विश्वास की बात याद आ गयी और उन्होंने गिरीश महाशय से कहा:

चौ० कहो गिरीश क्या कथन तुम्हारा।
केहि कारण प्रभु ह्वैहैं अवतारा॥
और कहो तब निज विस्वासा।
नाना-कृत किमि करैं प्रकासा।
दिव्य जन्म और करम जे जाना।
सब लगि अब तुम करो बखाना।
दो० सब सन कहो मैं कौन हूँ कहँ लग तब विस्वास।
क्या देखा समझा कहो महिमा करो प्रकास।

जिस प्रकार कोई विशेषज्ञ अपने विषय के सम्बन्ध में दृढ़तापूर्वक वर्णन करने में विचलित नहीं होता

उसी प्रकार प्रभु का आदेश पाकर गिरीश भी विचलित नहीं हुए।

दृढ़ विस्वास मनहीं जिन होई।
विचलित होइ सकैं किन सोई॥
तब गिरीश निज घुटनें टेके।
उर्ध्व दृष्टि प्रभु का मुख देखें॥
गद्-गद् कण्ठ दूई कर जोरे।
अति विनय सन वे अस बोले।

छन्द—बाल्मीकि, व्यास आदि,
न जिनकी महिमा गा सके।
मैं क्षुद्र, व्यक्ति क्या कहूँ,
जब थाह न ऋषि मुनि पा सके॥

बात बड़ी सरल है परन्तु संकेत बड़ा ही गहरा है। "हे प्रभो! आप तो आनन्दकंद सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा हैं। आप निर्गुण निराकार ब्रह्म ही करुणा सिंधु के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। वाल्मीकि, व्यास आदि आपके गुण-गान करते-करते थक गए; वेद भी आपका पार न पा सके। भला मैं एक क्षुद्र व्यक्ति आपकी महिमा का गान कैसे कर सकता हूँ?"

रामचरित मानस में भक्त सुतीक्ष्ण जी भी इसी प्रकार श्रीराम से कहते हैं,

कह मुनि प्रभु सुन बिनती मोरी।
अस्तुति करौं कवन विधि तोरी।
महिमा अमित मोर मति थोरी।
रवि सन्मुख खद्योत अँजोरी॥

सुतीक्ष्ण जी की भाँति गिरीश का सरल विश्वास देखकर मानो श्री रामकृष्ण देव भगवान् राम की भाँति कह उठे, 'रीझेउँ देखि तोरि चतुराई।'

छ०-विश्वास भरी बातें सुनी तो प्रभु को पुलकावली हुई।
दिव्य ब्रह्मस्वरूप में प्रभु की समाधि लग गई॥

दो०—दिव्य रूप तब प्रगट किए श्रीरामकृष्ण भगवान।
'कल्पतरु' प्रभु बन गए भक्तों के भाग्य महान॥

चौ०—बने 'कल्पतरु' करुणा कंदा।
जय जय जय प्रभु सच्चिदानन्दा॥

जिस प्रकार भगवान् राम को वन में माता जानकी की खोज करते हुए देखकर भगवान् शंकर भक्ति-भाव से कह उठे थे, 'जय सच्चिदानन्द जग पावन' उसी प्रकार आज भगवान् श्रीरामकृष्ण देव के, दिव्य-भाव से प्रदीप्त, मुख-मण्डल को देखकर परम उल्लास के साथ गिरीशचन्द्र प्रभु की चरण-रज बारम्बार धारण करते हुए जोर-जोर से गाने लगे,

जय रामकृष्ण जय रामकृष्ण।
जय रामकृष्ण जय रामकृष्ण॥

भक्त वृन्द भी आनन्द से भरकर 'जय रामकृष्ण! जय रामकृष्ण!' इस प्रकार चिल्लाने लगे। चारों ओर उल्लास और आनन्द भर गया।

दो०—भाव समाधि छूटी जब तब भक्तों की ओर।
दिव्य भाव मृदु-हास्य सह बोले प्रेम विभोर॥

चौ०—माँग-माँग वर जो मन भावा।
पूरन काम करन मैं आवा॥
अभय आज करहूँ सब प्राणी।
'हो चैतन्य तुम्हें' मम वाणी॥
अभय वाणी जब प्रभु ने दीन्ही।
जय-जयकार भक्तों ने कीन्ही॥
जय जय रामकृष्ण भगवाना।
करन लगे श्री चरण प्रनामा॥
अपर भक्त बरसावहिं फूला।
अति आनन्द न कष्ट न सूला॥

इस आनन्द लहर में डूबकर वे सब कुछ भूल गए। काल, देश किसी का भी ज्ञान न रहा और न रही याद वह प्रतिज्ञा:

'जब लगि प्रभु कै रोग रहेगा।
तब लगि कोई न स्पर्श करेगा॥'

दो०—एक-एक कर भक्त सब, गए जहाँ भगवान् ।
प्रभु के चरण स्पर्श कर करन लगे परनाम ॥
वक्ष स्थल स्पर्श कर बोले कृपा-निधान ।
'तुझे चैतन्य प्राप्त हो' दिया उसे वरदान ॥

चौ० जो-जो भक्त करें परनामा ।
सब को प्रभु देवें वरदाना ॥
हो चैतन्य प्राप्त तुम सबको ।
हो चैतन्य प्राप्त तुम सबको ॥
हाराणचन्द्र करें परनामा ।
धन्य-धन्य बलिराज समाना ॥
सिर पर चरण कमल प्रभु राखे ।
नहीं कछु और कामना ताके ॥
नहीं कछु भेद-भाव प्रभु कीन्हें ।
सबको धन्य-धन्य हरि कीन्हें ॥
देश-काल भूले सुध तन की ।
देख अहैतुकी दया प्रभु की ॥
भावाविष्ट हुए सब प्रानी ।
कल्पतरु की महिमा जानी ॥
मंत्र मुग्ध कोउ प्रेम अधीरा ।
मन आनन्द नयन बहे नीरा ॥
कोउ कोउ ध्यान जनित सुख पावा ।
प्रभु का रूप पूर्ण लख पावा ॥
काहू उर प्रगटे भगवाना ।
आनन्द कंद प्रभु कृपा निधाना ॥

दो०-चिल्लाकर कोउ-कोउ कहें, आओ जहाँ जो भाई ।
रामकृष्ण प्रभु कल्तपरु मन इच्छा फल पाई ॥

कोउ-कोउ पुष्प चयन कर लीन्हें ।
प्रभु चरणहीं समर्पित कीन्हें ॥
आत्म प्रकाश प्रभु अस कीन्हें ।
अभयदान सबहीं को दीन्हें ॥
पापि तापि सब पावन कीन्हें ।
अविरल भगति सकल को दीन्हें ॥

दिव्य अनन्त अनादि विभु लिए मनुज अवतार ।
नित नूतन लीला करें श्रीरामकृष्ण करतार ॥
रामकृष्ण भगवान् की लीला बड़ी अपार ।
मन बुद्धि नहीं कर सकें इस पर कभी विचार ॥
जन्म कर्म भगवान् के जाने दिव्य सुजान ।
देह तजें प्रभु से मिलें जनम मरण नहीं आन ।

मलय पवन के लगने से जिन पेड़ों में कुछ सार है, वे सब चन्दन बन जाते हैं; परन्तु बाँस, केला आदि साररहित वृक्षों पर कुछ असर नहीं होता। इसी तरह, भगवत्कृपा पाकर, जिनमें कुछ सार है, वे तो तत्काल सद्भाव से परिपूर्ण हो जाते हैं, किन्तु सारहीन विषयासक्त मनुष्य का सहज में कुछ नहीं होता।

—श्री श्रीरामकृष्ण

स्वामी अद्भुतानन्द–बिहार की एक आध्यात्मिक विभूति

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
तामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥
भा० पु० १,२०,१९

'हे ईश्वर ! अज्ञानीजनों की जैसी गाढ़ी प्रीति इन्द्रियों के नाशवान, क्षणभंगुर पदार्थों पर रहती है, वैसी ही प्रीति मेरी तुझ में हो और तेरी सतत् कामना करते हुए मेरे हृदय से वह कभी दूर न हो।' विष्णु-पुराण के इस श्लोक के तात्पर्य को गोस्वामी तुलसीदास ने और भी सुन्दर तथा स्पष्ट शब्दों में रामचरित मानस के अन्तिम दोहे में व्यक्त किया हैं :

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम ॥

युग-युग में आध्यात्मिक जगत् के महापुरुषों—भक्तों की यही आन्तरिक कामना रही है, परन्तु विरले ही ऐसे भक्त देखे जाते हैं, जिनके जीवन में यह प्रार्थना वास्तव में पूर्णरूपेण सफल हुई हो, और उन्हीं इने-गिने आध्यात्मिक विभूतियों में हैं स्वामी अद्भुतानन्द। बचपन से ही आप में प्रबल भगवद्-भावनाएँ परिलक्षित होती थीं; तथा आपने अपनी अपूर्व तितिक्षा एवं तपस्या से उनको पूर्णतः विकसित ही नहीं किया, बल्कि अपने पूत चरित्र और साधना से उपलब्ध आध्यात्मिक सम्पदाओं को व्यावहारिक जीवन में संसार के त्रिताप-दग्ध नर-नारियों को वितरित कर इन्हें सच्चा सुख और शान्ति प्रदान की।

संन्यास आश्रम की पूर्वावस्था की बातें साधु-संन्यासीगण नहीं करते ! यही उनकी परम्परा है। तो भी मानवीय परिस्थिति में उनके वार्तालाप आदि से संन्यासपूर्व जीवन की कुछ-कुछ घटनाओं का पता चलता है। इस विषय में स्वामी अद्भुतानन्द संन्यासियों में भी परम और चरम संन्यास व्रतधारी थे—इसलिये इनका बालपन जो बिहार राज्य के सारण जिले के किसी गाँव में बीता था, उनके जीवन का एक अज्ञात अध्याय रह गया है। जहाँ तक पता चलता है, अद्भुतानन्द जी का बचपन का नाम था रखतूराम और यह कितना सार्थक नाम था ! कहा जाता है कि गरीब किसान के परिवार में एक शिशु के चेचक से रोगग्रस्त होने पर उसके सरल माता-पिता ने परमेश्वर से बड़ी हार्दिक प्रार्थना की थी, 'हे राम, हे भगवान्, इस बच्चे को, मेरे लाल को नीरोग कर दो।' भगवान सरल आत्माओं की व्याकुल प्रार्थना बराबर सुनते हैं, और भगवद्-कृपा से बच्चा स्वस्थ हो गया। उसके कृतज्ञ माँ-बाप के लिए यह तो स्वाभाविक ही था कि वे सोचते कि रामजी की दया से ही उनका लाल काल के कराल गाल से बच गया, और इसी कारण बच्चे का नामकरण हुआ रखतूराम—राम ने इसकी रक्षा की है, और राम ही इसकी रक्षा करेंगे। नन्हेंपन में राम ने उन्हें मृत्यु से बचाकर माँ की गोद में लौटा दिया। परन्तु कुछ ही दिनों में पिता-माता का देहांत हो गया और वे अपने चाचा के आश्रम में पलने लगे। दैव दुर्विपाक से चाचा की खेती की जमीन उनके हाथ से चली गयी, और तब उन्हें गाँव में रहकर रोजी-रोजगार का कोई उपाय नहीं रहा। चाचाजी कलकत्ते आये, और अपने साथ बालक रखतूराम को भी लेते आये। चाचाजी के गाँव के एक साथी ने कलकत्ते में श्रीरामचन्द्र दत्त के परिवार में बालक रखतूराम को छोटा-मोटा काम करने के लिए रखवा दिया। रखतूराम सदा सत्य बोलने वाले निर्भीक तथा परिश्रमी थे। थोड़े ही दिनों में ये दत्त परिवार के स्त्री-पुरुष सब का प्रियपात्र बन गये। एक अनजान ग्रामीण लड़के के पास कलकत्ते जैसे विशाल नगर में उसके सद्गुण मात्र उसकी ही पूँजी थी; और यह पूँजी इतनी पर्याप्त थी कि एक अपरिचित और नये परिवेश में भरण-पोषण की समस्या तो हल हो ही गयी, और रामचन्द्र दत्त और उनकी धर्मपत्नी से वात्सल्यपूर्ण स्नेह भी उन्हें प्राप्त हुआ।

रामचन्द्र दत्त श्री रामकृष्ण परमहंस देव के एक प्रमुख गृही भक्त थे, अक्सर दक्षिणेश्वर जाया करते, सत् प्रसंग होता रहता, और परमहंस देव के वचनामृत का प्रगाढ़ प्रभाव उन पर था। वे घर पर परमहंस देव के उपदेशों की चर्चा बराबर किया करते : 'भगवान मनुष्य का मन देखते हैं, कौन किस काम में है और कहाँ है, यह नहीं देखते।' 'जो व्याकुल हो ईश्वर के सिवाय कुछ नहीं चाहता, ईश्वर उसी को प्रकट होते हैं।' 'एकान्त में उनकी प्रार्थना करो, उनके लिये रोओ, तब उनकी दया होगी'—इत्यादि। इन वचनों का गहरा प्रभाव रखतूराम के मन पर पड़ा करता, और उसी समय से उनका भगवद् चिन्तन आरम्भ हुआ। कभी-कभी गर्मी के मौसम में भी सिर से पैर तक कम्बल से ढककर बालक चुपचाप पड़ा रहता, और उसकी आँखें आँसू से भींगी रहने के कारण लोग सोचते, कि अपने गाँव के प्रिय आत्मीयजनों को यादकर बालक आँसू बहा रहा है। बात वैसी नहीं थी, क्योंकि रखतूराम रामचन्द्र दत्त से जो परमहंस देव के उपदेशों को सुनते थे, उनको अमल में लाते थे, और भगवद्-प्राप्ति के लिए व्याकुल होने से स्वतः ही अश्रुप्रवाह होता था। मन-ही-मन बालक उस महापुरुष के दर्शनों के लिए व्याकुल हो रहा था, जिनकी वाणी इतनी सुन्दर और मधुर थी। सुअवसर आने में विलम्ब न हुआ। १८७९ साल बीत रहा था या १८८० साल का प्रारंभ था। रखतूराम ने रामचन्द्र दत्त से आग्रह किया, 'आप जब इस महात्मा से मिलने जायँ, तब मुझे भी साथ ले चलें।' रामबाबू एक दिन इस बालक को लेकर दक्षिणेश्वर गये, और परमहंस देव ने उन्हें देखते ही पहचान लिया कि आध्यात्मिकता के उच्च शिखर पर आरोहन करने की क्षमता एवं अधिकार ये रखते हैं। उन्होंने कहा, 'राम यह लड़का तुम्हें कहाँ मिला—इसमें तो साधु का लक्षण देख रहा हूँ।' रखतूराम ने पादस्पर्श कर प्रणाम किया और करबद्ध खड़े रहे। श्रीरामकृष्ण कह रहे थे, 'जो नित्यसिद्ध हैं, उनको ज्ञान जन्म से ही प्राप्त रहता है। मानो वे पत्थर से दबे हुए फव्वारे हैं। मिस्त्री (जहाँ ऐसे फव्वारे हों, मरम्मत के सिलसिले में) इधर-उधर कुछ-कुछ करते-धरते, जब पत्थर को जरा हटा देता है, तो हठात् फव्वारे से जोरों से पानी निकलने लगता है।' रखतूराम का आध्यात्मिक व्यक्तित्व उच्च कोटि का था, और पत्थर हटाने का काम जिस 'मिस्त्री' को करना था, ईश्वर की अपार कृपा से वहीं उनके गुरुदेव के रूप में युगावतार श्री रामकृष्ण स्वयं उनके सामने थे। बातें करते हुए श्री रामकृष्ण ने उन्हें स्पर्श किया और सहसा रखतूराम को रोमांच हो गया—मानो फव्वारे का मुँह खुल गया—दरदर आँसू बहने लगा—वे प्रायः बाह्यबोधरहित हो चले। काफी देर तक यही दशा रही और पुनः श्रीरामकृष्ण ने उन्हें स्पर्श किया और तब वे सामान्य अवस्था में लौट आये। दो-एक बार और दर्शन के बाद रखतूराम का मन इस आश्चर्य प्रेमी महापुरुष के संसर्ग से क्षण भर अलग होते ही व्याकुल होने लगा। उन्होंने कहा, 'मैं अब राम बाबू के यहाँ नहीं रह सकता—यहीं दक्षिणेश्वर में रहूँगा।' परमहंस देव ने समझाया, 'ऐसा कभी न करो, राम बाबू के यहाँ रहो।' मन मारकर रखतूराम ने यह आज्ञा मान ली।

स्वामी अद्भुतानन्द और एक नाम से सुप्रसिद्ध थे। रामकृष्ण के गृही एवं संन्यासी भक्तों तथा उनके सम्पर्क में आनेवाले सहस्रों जिज्ञासु एवं आध्यात्मिक सान्त्वना के इच्छुकों में वे बड़ी श्रद्धा और प्रेम के साथ लाटू महाराज के नाम से परिचित थे। संन्यासपूर्व जीवन में राम बाबू के परिवार के लोगों ने स्नेहवश रखतूराम का लाटू नामकरण किया था या परमहंस देव ने प्यार से उन्हें "लाटू" "लेटो" या "नेटो" नाम से पुकारना शुरू किया, इसका पता नहीं। श्रीरामकृष्ण ने स्वास्थ्य ठीक नहीं रहने के कारण वैद्य के निर्देशानुसार अपनी जन्मभूमि कामारपुकुर गाँव में आठ माह बिताये। इस ८ माह की अवधि लाटू महाराज ने कैसे बितायी, वे अपने परमाराध्य गुरुदेव के वियोग में कितना व्यथित रहते और कैसे अधिकांश समय दक्षिणेश्वर में बिताते जहाँ के पूत परिवेश में उन्हें उनकी याद बराबर

आती रहती थी इसका विवरण तो ऐसा है कि आश्चर्य होता है—इतना गंभीर प्रेम—इतनी प्रगाढ़ श्रद्धा का कारण क्या हो सकता था ? इस प्रश्न का उत्तर हम इस श्लोक से पा सकते हैं—

नान्यास्पृहा रघुपते ! हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे ।
कामादिदोष रहितं कुरु मानसं च ।।

कोई दूसरी भावना—कोई और कामना नहीं—केवल एकमात्र स्पृहा कि हमारे मन में शुद्धा भक्ति हो—इस भक्ति के पात्र अवतार पुरुष का दर्शन हुआ, सत्संग होता रहा और तब बीच में यदि वे आँख के ओझल हो जायँ, तो कैसे भक्त इसे सह सकता है ? यदि सामान्य दृष्टि-शक्ति से उन्हें न देख सकें, तो श्रद्धा-प्रेम-भक्ति-प्रेरित अन्तर्दृष्टि के अन्तराल वे नहीं हो सकते और लाटू महाराज को इस अवधि में इसी तरह दर्शन हुए ।

श्रीरामकृष्ण देव दक्षिणेश्वर लौटे । उनकी देख-रेख के लिए एक शुद्धात्मा और कर्त्तव्यपरायण भक्त की आवश्यकता को लाटू महाराज से अधिक सुन्दर रूप से कौन पूरा कर सकता था ? उनकी हृदयाकांक्षा पूरी हुई—राम बाबू ने भी तनिक आपत्ति न की—लाटू महाराज अभूतपूर्व लगन के साथ साधन प्रयास करने लगे । उनके लिए गुरुसेवा ही तपस्या थी, और मन उनका इतना तद्गत रहा करता कि एक दिन पंचवटी में ध्यान में इतना लीन हो गये कि बार-बार पुकारने पर भी कोई सुध नहीं । स्वामी विवेकानन्द उनके ध्यान की गम्भीरता के बारे में उत्सुक हो एक लकड़ी से पंचवटी के वृक्षपर ठकठकाने लगे । अन्त में श्रीरामकृष्ण ने स्वयं अपनी आँखों लाटू महाराज की यह दशा देखकर मना किया कि कोई लाटू के साथ ऐसा उपद्रव न करे । एक दिन की घटना है: रात गहरी हो रही थी—श्रीरामकृष्ण ने शिष्य भक्तों को भिन्न-भिन्न स्थानों में बैठकर ध्यान धरने के लिए निर्देश दिया । बिल्व-वृक्ष के नीचे ध्यान लगाने के उपरान्त जब लाटू महाराज लौटे, उन्होंने कहा —'आज लेटो का पुनर्जन्म हो गया ।' लाटू महाराज से श्रीरामकृष्ण का दिव्य प्रेम और उनकी आध्यात्मिक प्रगति के लिए वे किस तरह सतत् सचेष्ट रहा करते थे, इसका प्रमाण और एक दिन की घटना से मिलता है । श्रीरामकृष्ण ने कहा 'जा लाटू, शिव-मन्दिर में बैठकर ध्यान धर । ध्यानयोग में लाटू महाराज कालातीत दशा में चले गये—अपराह्न हो चला—निश्चल प्रस्तर-मूर्तिवत् लाटू ध्यान में मग्न हैं । दर-दर पसीना चल रहा है । सामान्यतः मनुष्य ऐसी स्थिति में मन स्थिर ही नहीं कर पाता । परन्तु अध्यात्म जगत् के प्रचण्ड मार्त्तण्ड—स्वामी अद्भुतानन्द पर भौतिक संसार का सूर्य कैसे विजयी होता ? रूपरसगन्धस्पर्श—बोधरहित दशा में आत्मलीन महापुरुष सर्वजयी होते हैं । श्रीरामकृष्ण देव वहाँ स्वयं पधारे, और कर-कमलों में पंखा लेकर मन्द-मन्द विजन डुलाने लगे । धीरे-धीरे लाटू का ध्यान छूटने लगा—आँखें खुलीं और अपने ध्यान के देवता परमपूज्य गुरुदेव ही उनकी सेवा कर रहे हैं—यह देखकर अपार संकोच में किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये ।

श्री श्रीमाँ इस समय दक्षिणेश्वर में रहती थीं, और बहुधा भक्तगण श्रीरामकृष्ण द्वारा प्रेरित हो साधना करने के लिए यहीं रात-बिताते थे । श्री श्रीमाँ को इन सबका भोजन अकेले अपने हाथों पकाना पड़ता था । कुलीन ग्रामीण महिलाओं की परिपाटी आप बराबर बनाये रखती थीं, और पर्दा किया करती थीं । लाटू महाराज इतने ही शुद्धसत्व और पूतात्मा थे कि श्री श्रीमाँ को इनसे कभी संकोच नहीं हुआ, और बराबर लाटू महाराज इनको रसोई के सारे काम में मदद करते रहे । माताजी के प्रति इनकी अपूर्व श्रद्धा और माताजी का इनके लिए वात्सल्यभाव से पूर्ण स्नेह भी दिव्य भावों के ही द्योतक हैं ।

परमहंस देव के गलरोग की चिकित्सा कलकत्ते में श्यामपुकुर महल्ले में रहकर करवाने का निश्चय हुआ । शिष्य सेवकों में प्रमुख लाटू महाराज ऐसा एकाग्रचित्त होकर सेवा में निरन्तर निरत रहे और साथ-साथ

ऐसी कठोर तपस्या करते रहे जिसकी तुलना नहीं हो सकती।

आप महावीर जी के परमभक्त थे। तुलसीदास के वर्णन में पवननन्दन को प्रयुक्त विशेषणों में 'रघुपति-प्रिय-भक्त', 'सकलगुणनिधान', 'ज्ञानिनामग्रगण्य' का उल्लेख है और रामकृष्ण के प्रिय भक्त अद्भुतानन्दजी में ये सभी गुण वर्त्तमान थे।

श्रीकृष्ण ने भक्तवीर अर्जुन को गीता में सम्बोधन किया है—'गुडाकेश'—निद्रा विजयी। कभी श्रीरामकृष्ण ने अपने प्यारे लाटू को सन्ध्या समय झुकते हुए देखकर फटकारा था, 'अरे तू अभी सोता है—अपना कर्त्तव्य कब करेगा? उसी दिन से लाटू महाराज ने जिन्हें प्रार्थिव संसार के बाधा-विघ्नों से संग्राम में 'अतुलित बलधाम' कहने से तनिक भी अत्युक्ति नहीं होगी, रात में सोना छोड़ दिया। आहार भी उनका ऐसा था कि सामान्य मनुष्य का शरीर वैसे भोजन पर थोड़े ही दिनों में परास्त हो जाता। परन्तु महावीर भक्त के लिए ऐसी तितिक्षा तो सामान्य बात थी।

श्यामपुकुर से श्रीरामकृष्ण देव को कलकत्ते के उपान्त-क्षेत्र काशीपुर महल्ले में लाया गया। गलरोग उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। भक्तों और विशेषकर श्रीरामकृष्ण गतप्राण नौजवान भक्तों की हृदय-वेदना, उनकी उत्कंठा और सर्वोपरि कठोर परिश्रम तथा अध्यवसाय के साथ सेवा, आध्यात्मिक जगत् में एक अनिवार्य ज्योतिशिखा है, जिससे भूले-भटके थके-मादे नर-नारियों को दिशा प्राप्त होती है। महाप्रयाण का समय सन्निकट है—श्रीरामकृष्ण ने कभी रोग-यन्त्रणा उनको सताती है, ऐसा प्रतीत नहीं होने दिया। सदैव हँसमुख, सर्वदा प्रिय शिष्यों और भक्तों को भवबन्धन से मुक्त होने का उपाय बताने में तत्पर, उस महापुरुष ने एक दिन ११ काषाय वस्त्र और रुद्राक्षमाला अपने अंतरंग ११ शिष्यों को अपने हाथों से देकर रामकृष्ण संन्यासी संघ की स्थापना की। उन्हीं ११ भाग्यशाली महान् आत्माओं में एक थे लाटू महाराज। श्रीरामकृष्ण भावधारा-महाप्लावन से भारतवर्ष और अन्यान्य देशों में नवीन आध्यात्मिकता और सार्वभौम धार्मिकता के प्रचार और प्रसार में वे ग्यारह दिक्पाल थे। इनमें एक-से-एक विद्वान और भव्य-कुलोद्भवों की कमी नहीं थी यद्यपि इनके ईष्ट-गुरु प्रायः निरक्षर थे, और अपने को 'मूर्खराज' कहा करते थे। श्रीरामकृष्ण तो कुछ लिख-पढ़ भी लेते थे, लाटू महाराज 'महामूर्खराज' थे, क्योंकि इनको अक्षर बोध हुआ ही नहीं। और इसकी आवश्यकता ही क्या थी—जिन्होंने अक्षर ब्रह्म का साक्षात्कार किया वे इस क्षर संसार के अक्षरों की लिपियों की लीपा-पोती में क्यों सन पाते? ज्ञानी शिरोमणि आचार्य शंकर ने तो विवेक चूड़ामणि में कहा ही है—

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्र-व्याख्यान-कौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां, तद्वद् भुक्तये न तु मुक्तये॥

शब्द-योजना—शब्दों की लड़ियाँ शास्त्र व्याख्या में कुशलता—ये विद्वानों के विलासमात्र हैं—इनसे मुक्ति नहीं मिलती। शैशवावस्था से मुक्ति—परमप्रद-प्राप्ति के लिए व्यग्र लाटू महाराज के वचनों में ज्ञान भरे थे। वे ज्ञान परा विद्या के नहीं, बल्कि अपरा विद्या के हैं। आज भी इन बचनों के संकलन को पढ़कर कितनी शान्ति—कितनी अपूर्व तृप्ति मिलती है। आप कहा करते थे कि तैलधारा सदृश अविच्छिन्न रूपेण ईश्वर का नाम लेते रहना ही परमपद प्राप्ति का प्रकृष्ट उपाय है। ज्ञानी को तत्व दर्शन होता है, तो वे निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नाम और नामी अभिन्न हैं, और नाम ही ईश्वर प्राप्ति का सोपान और साधना है। तुलसीदासजी ने इसी भावना को अपनी सुप्रसिद्ध चौपाई में अनुपम शब्दों में उच्चरित किया है:

नाम रूप गति अकथ कहानी,
समुझत सुखद न परत बखानी।
अरुप सरुप बीच नाम सुलाखी,
उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी॥

इसी दोभाषिया से जिनकी इतनी गहरी मित्रता और इतना प्रेम हो, उनको अक्षर लिपियों के सहारे शास्त्रों की भाषा नहीं सीखनी थी।

अगस्त १६, १८८६ को श्रीरामकृष्ण परमहंस महासमाधि मग्न हुए। लाटू अपने दूसरे साथियों के साथ वाराहनगर मोहल्ले में एक जीर्ण-शीर्ण आवास में चले गए। १८८७ साल में आप श्री श्रीमाँ के साथ वृन्दावन गये। थोड़े दिनों के बाद आप कलकत्ते लौटे। १८८७ से करीब १८९२ ई० तक आप गंगा के तटपर ही रहा करते थे। लाटू महाराज को लोग कभी इस घाट कभी उस घाट पर देखते। जीवन धारण के लिए आकाश वृत्ति थी—कठोरतम तपस्या चलती रही। ब्रह्मज्ञ महापुरुष विदेही होते हैं, और सचमुच स्वामी अद्भुतानन्द इस समय पूर्ण विदेह-भावापन्न थे। कभी बागबाजार महल्ले में पुल के नीचे बैठे ध्यानमग्न हैं, तो कभी लोगों के कौतूहल से बचने के लिए मालगाड़ी के डब्बे में बैठे ऐसे समाधिलीन हुए कि गाड़ी कहाँ से खींचकर कहाँ लायी गयी, परन्तु ध्यानयोग निर्विघ्न और अक्षुण्ण रहा। १८९५ ई० में आपने पुरी में जगन्नाथ दर्शन किया। १८९७ साल में स्वामी विवेकानन्द पश्चात्य देशों से लौटकर भारत-भ्रमण के क्रम में अपने साथ अद्भुतानन्दजी को लेते गये। १९०२ ई० में स्वामी विवेकानन्द ने बड़ा आग्रह किया कि लाटू महाराज रामकृष्ण मठ और मिशन का एक ट्रस्टी बनें। परन्तु इस संन्यासी के जीवन का मूल-मंत्र था निरन्तर-अनवरत् भगवद् चिन्तन—भगवद् भजन—भगवद् ध्यान से कभी भी विछोह न हो—इसलिए रामकृष्ण संघ से आन्तरिक प्रेम और स्वामीजी के प्रति विपुल स्नेह एवं श्रद्धा रहते हुए भी आप इस आग्रह से समहत न हुए।

श्रीरामकृष्ण के योग्य शिष्य स्वामी अद्भुतानन्द के धार्मिक विचारों की उदारता देखकर अचम्भित होना पड़ता है। आप ईद और मुहर्रम में पीर की दरगाह पर पूजा अवश्य भेजते और ईसाइयों के धर्मोत्सव के अवसर पर गिरजाघरों में भेंट चढ़ाते थे। आपमें अभूतपूर्व सहनशीलता थी। एक दिन एक शराबी मतवाला होकर बदजबान बोल रहा था। अद्भुतानन्द जी के भक्तगण क्रोधित हो उसे मारने को उतारू हो गये। लाटू महाराज ने कहा, 'अजी वह तो शराब के नशे में गाली बक रहा है, और तुमलोग कैसे हो, कि शराब कभी छुए ही नहीं, तो भी मतवाले-सा कैसी भद्दी बातें करते हो—तो सजा किसे मिलनी चाहिए—शराबी को या तुम्हें?

श्रीरामकृष्ण के भक्तों में गिरीशचन्द्र घोष से लाटू महाराज की गाढ़ी मित्रता थी। उनके देहान्त के बाद आप कलकत्ते से वाराणसी चले आये, और यहीं विश्वनाथ एवं अन्नपूर्णा के भजन, अपनी साधना, भक्त तथा संसार दुःख से जर्जर सैकड़ों व्यक्तियों को सदुपदेश और सत्संग से शान्ति और आनन्द प्रदान करना ही आपका कार्य रहा। २४ अप्रैल, १९२० ई० में आपने महासमाधि प्राप्त की। इसके कुछ दिन पहले से आप सदा अन्तर्मुखी भाव में रहते थे। अन्तिम समय दूध दिये जाने पर आपने असन्तोष प्रकट किया। चिकित्सक ने परीक्षा की तो हृदय-स्पन्दन नहीं मिला। परन्तु पूर्ण ज्ञान था। विश्वनाथ का चरणामृत दिये जाने पर बड़े आग्रह से आपने पान किया। महासमाधि के बाद आपकी शान्त, सकरुण एवं भव्य मुद्रा देखकर—सभी को आश्चर्य हुआ।

स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि अर्वाचीन युग में आध्यात्मिक चमत्कार नहीं दीखते—इस कथन के अपवाद हैं स्वामी अद्भुतानन्द। इनके व्यक्तित्व और जीवन से बढ़कर और क्या चमत्कार हो सकता है? इस महापुरुष के जीवन और इनके वचनों के स्मरण-मनन से हमारा यथार्थ कल्याण होता है। ◻

[स्वामी विवेकानन्द की जन्म शताब्दी के अवसर पर रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना द्वारा १९६४ ई० में प्रकाशित स्मारिका (सोविनिर) से साभार—सं०]

खुले नेत्रों से ध्यान

स्वामी गोकुलानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन, नरोत्तम नगर (उत्तर प्रदेश)

नेत्र खुले रखकर ध्यान करने का विचार अन्तर्विरोधी लगता है। धार्मिक अर्थों में ध्यान का तात्पर्य अन्तर्मुखी होने की प्रक्रिया से है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि ध्यान करने के लिए व्यक्ति को अपनी दृष्टि अपने भीतर की ओर करनी होगी। अतः बन्द आँखों से ही ध्यान करना संभव है। ऐसा विश्लेषण करने पर, 'आँखें खुली रखकर ध्यान करना' हास्यप्रद लगता है।

रहस्यवादियों ने सदा घोषणा की है कि इस जीवन में उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को निम्नतर अहं की प्रेरणाओं को अस्वीकार करना होगा ताकि ईश्वरीय स्वरूप अपनी समस्त गरिमा के साथ उद्दीप्त हो सके। अब, यह मार्ग, निस्सन्देह कठिन है, किन्तु असंभव नहीं। इसके लिए आजीवन संघर्ष की आवश्यकता है। हृदय के आन्तरिक देवालय के आधिपत्य के लिए, शरीर-रूपी मन्दिर में परम प्रेमास्पद को प्रतिष्ठित करने के लिए, व्यक्ति को ध्यान का अभ्यास करना होता है। किन्तु जिस युग में हम जी रहे हैं वह निवारक ध्यान के प्रतिकूल है। पूर्ण निवृत्तियों के दिन अब नहीं रहे। किन्तु यह भी सत्य है कि हम उस स्वर्ग के साम्राज्य में जो हमारे ही भीतर है तब तक प्रवेश नहीं पा सकते, जब तक हम अनवरत ध्यान को अपने जीवन में उतार नहीं लेते। जिज्ञासु साधक का जीवन सतत् ध्यान का जीवन होना चाहिए। किन्तु सतत् ध्यान असम्भव के समान लगता है। फिर, लम्बे समय तक ध्यान के बिना आत्मस्वरूप की उपलब्धि संभव नहीं है, और बंद आँखों से ध्यान द्वारा पूर्ण रूप से इस उद्देश्य की पूर्त्ति नहीं हो सकती। तब, क्या इसका कोई निराकरण है? हाँ, स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों में इस अवरोध का एक सुखद समाधान है।

स्वामी जी ने एक लघु किन्तु, जिसे हम 'पाण्डित्यपूर्ण उक्ति' कह सकते हैं, की सहायता से खुली आँखों द्वारा ध्यान के अभ्यास के लिए एक बहुत ही व्यावहारिक सुझाव दिया है और वह है 'ईश्वर को खोजो मत, बल्कि उसे देखो।' इस प्रकार स्वामीजी हमसे कहते हैं कि सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर को देखो, केवल ईश्वर को देखो। वास्तव में केवल ईश्वर ही सत्य है, बाकी सब असत्य है। यदि हम स्वामी जी के निर्देशों के अनुसार कार्य करें तो निश्चित रूप से वस्तुओं के समग्र मूल्यांकन में एक क्रान्तिकारी परिवर्त्तन आयेगा। बाह्य रूपों वाले इस संसार के आंशिक, एककक्षीय एवं असत्य चित्र के स्थान पर हमें सत्य का एक सही एवं समग्र चित्र प्राप्त होगा। तब हम वस्तुओं के बाह्य रूप को देखना बन्द कर देंगे और माया के जाल में फँस नहीं पायेंगे। इसके बदले हम वस्तुओं के आन्तरिक रूप को देखेंगे, तथा इसी जीवन में मुक्त हो जायेंगे।

स्वामी जी के आगमन के पूर्व यह सर्वमान्य विश्वास था कि निरन्तर या अखण्ड प्रार्थना की बात एक व्यावहारिक सुझाव है, लेकिन, कल्पना के किसी भी स्तर से, यह बात ध्यान के सम्बन्ध में लागू नहीं मानी जाती थी। किन्तु, यह स्वामी विवेकानन्द की प्रतिभा का चमत्कार था कि उन्होंने अनवरत् ध्यान के आश्चर्यजनक सूत्र को खोज निकाला तथा उसे स्वयं प्रयोग करके आनेवाली पीढ़ियों के लिए एक मूल्यवान धरोहर के रूप में रख छोड़ा। जितना ही शीघ्र संघर्ष से आक्रान्त यह संसार इस नयी शिक्षा की उपयोगिता को अनुभव करेगा, उतना ही मानव-जाति का कल्याण होगा। □

अनुवादक—प्रो० राधाकृष्ण प्रसाद

नारद-भक्ति-सूत्र

—श्रीमत् स्वामी वेदान्तानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना।

षष्ठ अनुवाक

(गतांक से आगे)

"संभवतः किसी धनी सम्भ्रांत महिला का परिवार था। पति-पुत्र सभी मर गये—कोई नहीं रहा—रह गयीं केवल कुछेक विधवाएँ !—वे मरतीं नहीं। घर का यह हिस्सा गिर गया है, वह भाग धँस गया है, छप्पर के ऊपर पीपल का वृक्ष उग गया है—इसके साथ ही दो-चार पेड़ साग के डंठल भी उग आये हैं। विधवाएँ उन्हें तोड़कर चर्चरी बनातीं और संसार करती हैं ! क्यों ? भगवान को पुकारतीं क्यों नहीं ? उनकी शरणागत हों न—उन्हें तो समय है ! लेकिन यह नहीं होगा।"

"संभवतः विवाह के बाद किसी के पति का देहान्त हो गया—निःसन्तान विधवा है। भगवान को क्यों नहीं पुकारती ? लेकिन सो नहीं—भाई के घर की गृहिणी हो गयी। माथे पर जूड़ा, आँचल में चाभी का गुच्छा बाँधे, हाथ हिलाकर गृहिणीपना करती है। उस सर्वनाशी को देखकर मुहल्ले के सीधे लोग डरते हैं। और वह विधवा यह कहती हुई बाहर निकलती है—'मेरे नहीं रहने पर भैया का भोजन नहीं हो पाता।' मरो अभागन, तुम्हारा क्या हुआ इसे देख—सो नहीं !"

आसक्ति त्याग के बिना माया रूपी नदी को पार नहीं किया जा सकता।

"जो लोग ईश्वर की प्राप्ति के लिए साधन-भजन करना चाहते हैं, उन्हें किसी भी प्रकार कामिनी-कांचन में आसक्त नहीं होना पड़ेगा। कामिनी-कांचन के सम्पर्क में रहने पर त्रिकाल में भी उन्हें ईश्वर-लाभ नहीं होगा। जैसे लाई भूजने के समय जो लाई भांड़ से बाहर गिर जाती है उसे कोई दाग नहीं लगता, किन्तु गर्म बालू के भाँड़ में रहने पर कहीं-न-कहीं काला दाग लग ही जाता है।"……

"कामिनी-कांचन का पहले मन में त्याग करना होगा। उसके बाद ईश्वर की इच्छा से मन से भी त्याग करना होगा, तथा बाहर से भी त्याग करना होगा।… जो कुछ देखते हो, सुनते हो, सोचते हो, सब माया है। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि कामिनी-कांचन ही माया के आवरण हैं। गृहस्थजन समय-समय पर निर्जन स्थान में जा साधन-भजन के द्वारा भक्ति-लाभ कर मन में त्याग करेंगे। संन्यासीगण बाहर का त्याग और मन का त्याग—दोनों ही करेंगे।"

"कामिनी-कांचन में अधिक दिनों तक रहने पर फिर होश नहीं रहता। विष्ठा का भार ढोते-ढोते मेहतर को फिर उससे घृणा नहीं होती। नारियों की माया में एक बार डूब जाने पर फिर निकलना कठिन हो जाता है।… कामिनी और कांचन—ये ही दो विघ्न हैं। इन दोनों के प्रति आसक्ति से मनुष्य का जो पतन होता है, उसे वह समझ नहीं पाता। जिसे भूत पकड़ लेता है वह स्वयं नहीं समझ पाता कि उसे भूत ने पकड़ लिया है। वह सोचता है कि मैं ठीक हूँ।…"

"बड़ी-बड़ी दुकानों में चावल और दाल का ऊँचा गोला रहता है। उसे चूहे खा जायँगे इसलिए दुकानदार सूप में गुड़-लाई रख देता है। खाने पर मीठी लगती है और सोंधी-सोंधी गन्ध लगती है, इसलिए सारे चूहे सूप में जाकर सारी रात कुड़-कुड़ाकर खाते हैं, गोला में पहुँच नहीं पाते। इसी प्रकार मनुष्य भी कामिनी-कांचन में मुग्ध होकर ईश्वर की प्राप्ति नहीं कर पाते। भूमि, स्त्री, रुपया—इन तीन वस्तुओं पर मन रखने से भगवान से मन का योग नहीं होता। कामिनी और कांचन जीव को बद्ध करते हैं। जीव की स्वाधीनता जाती रहती है। कामिनी के रहने से ही कांचन की आवश्यकता होती है। उसके लिए दूसरे की गुलामी करनी पड़ती है, तुम अपने मन के अनुसार काम नहीं कर पाते हो। कामिनी-कांचन में आसक्ति रहने पर ही विद्या का अहंकार, रुपयों का अहंकार, ऊँचे पद का अहंकार—ये सब होते हैं।"

आसक्ति होने से सांसारिक बन्धन क्रमशः किस प्रकार दृढ़ हो जाता है 'एक कौपीन के वास्ते' कहानी इसका सुन्दर उदाहरण है।—

"एक साधु गुरु के उपदेशानुसार निर्जन स्थान में एक साधारण कुटिया बनाकर साधन-भजन करने लगे। वे प्रतिदिन स्नान कर एक पेड़ पर अपने वस्त्र और कौपीन सूखने के लिए धर देते थे। साधु जब भिक्षाटन के लिए बाहर जाते तब चूहा आकर कौपीन काट देता। भिक्षा के लिए निकलकर साधु लोगों से चूहे के उपद्रव की बात बताते और नया कौपीन माँगते। उन लोगों ने एक दिन कहा—'आपको रोज-रोज कौन नया कौपीन देगा? आप एक काम करें। एक बिल्ली पालें, तब बिल्ली के भय से फिर चूहा नहीं आयगा।' उनलोगों ने साधु को एक बिल्ली का बच्चा दिया। भिक्षा में दूध लाकर साधु उस बिल्ली को खिलाने लगे। कुछ दिनों के बाद लोगों ने साधु से कहा, 'साधुजी, आपको रोज दूध की जरूरत है। बारहों महीने आपको कौन दूध देगा? आप एक गाय पालें, इससे आप स्वयं दूध खा पायँगे और बिल्ली को भी खिला सकेंगे।' यह कहकर गाँव-वालों ने उन्हें एक गाय दी। तब साधु उस गाय के लिए घास-चारा की भिक्षा माँगने लगे। तब गाँव के लोगों ने उनसे कहा, 'आप कुटिया के निकट खाली जमीन पर खेती करें, इससे फिर पुआल की भीख नहीं माँगनी पड़ेगी।' तब साधु खाली पड़ी हुई भूमि पर खेती करने लगे। फसल रखने के लिए भुसकार आदि तैयार कर गृहस्थों की भाँति अत्यन्त व्यस्त होकर दिन बिताने लगे। कुछ दिनों के बाद साधु के गुरु उस स्थान पर आ उपस्थित हुए। उन्होंने शिष्य से पूछा, 'वत्स, यह सब क्या है?' शिष्य ने अप्रतिहत होकर कहा, 'प्रभु, यह सब एक कौपीन के वास्ते हो गया।' गुरु के दर्शन से उनके सारे मोह कट गये और तभी सब कुछ त्यागकर वे गुरु के साथ चले गये। देखो, एक कौपीन के लिए कितने कष्ट हैं!"

जिन लोगों को 'मेरा' समझकर जीव संसार में अशेष दुःखों का भोग करता है, उनलोगों का उस व्यक्ति के लिए प्रेम कितना स्वल्प है इसे वह समझ नहीं पाता है। समझ पाते ही आसक्ति के हाथ से, माया के बन्धन से, वह मुक्त हो जाता है।

"गुरु ने शिष्य को कहा, 'संसार मिथ्या है। तू मेरे साथ चला आ। ईश्वर ही तुम्हारे अपने हैं, और कोई अपना नहीं है।' शिष्य ने कहा, 'प्रभु, ये सब मुझे इतना प्यार करते हैं—मेरी माँ, मेरे पिताजी, मेरी स्त्री—इन सबको छोड़कर कैसे जाऊँगा?' गुरु ने कहा, 'तू मेरा-मेरा करता है, और कहता है, वे सब प्रेम करते हैं—यह तेरे मन की भूल है। मैं तुझे दिखा देता हूँ, कोई तेरा अपना नहीं। इस दवा की कुछ गोलियाँ अपने पास रख ले। तू घर जाकर कुछ गोलियाँ खाकर सो रहना। लोग समझेंगे कि तेरा देहान्त हो गया है। किन्तु, तेरा ज्ञान नहीं जायगा, सब कुछ देख-सुन सकोगे। मैं उसी समय आ जाऊँगा। इसके बाद धीरे-धीरे तुझे पहलेवाली अवस्था हो जायगी।' शिष्य ने वैसा ही किया। घर पर रोना-पीटना शुरु हो गया। इसी समय गुरु कविराज के वेश में आ उपस्थित हुए। सब कुछ सुनकर बोले, 'अच्छा, इसकी दवा है—फिर बच जायगा।' घर के सभी लोगों को जैसे हाथ में स्वर्ग मिल गया। तब उस कविराज ने कहा, 'तब एक बात है, दवा पहले किसी एक आदमी को खानी होगी। इसके बाद इसको खिलायी जायगी। किन्तु जो पहले खायगा, उसकी मृत्यु हो जायगी। तब, यहाँ उसकी माँ या पत्नी—इसको तो सभी हैं, कोई-न-कोई खायगी ही, इसमें सन्देह नहीं। यह होते ही लड़का जी उठेगा।' तब सब रोना छोड़कर चुप हो गये। शिष्य सारी बातें सुन रहा है। कविराज ने पहले माँ को पुकारा। माँ ने कहा, 'यही तो, यह बड़ा संसार है, मेरे जाने पर कौन यह सब देखे-सुनेगा, यही सोच रही हूँ।' पत्नी अभी-अभी कहती थी, 'अरी बहना, मेरा क्या होगा री?' तब रोते-रोते कहने लगी, 'उनका तो जो होना था वह हो गया है, मेरे छोटे-छोटे बच्चों का अब क्या होगा, मैं यदि जाती हूँ तो इन लोगों को कौन देखेगा? मैं कैसे वह दवा खाऊँगी? तब शिष्य का नशा चला गया। वह उठ खड़ा हुआ और बोला, 'गुरुदेव चलिए,। यह कहकर वह गुरु के साथ चला गया।"

सांसारिक प्रेम-बन्धन को वस्तुतः इसी प्रकार तुच्छ कहकर श्रीरामकृष्णदेव गृही व्यक्ति को लक्ष्यकर कहते हैं—"इतने दिनों तक संसार करके तो देख लिया, सब फाँकीबाजी है। ईश्वर ही सत्य हैं और सब कुछ दो दिनों के लिए हैं। और इनमें कुछ नहीं है। आमड़े की चटनी खाने की इच्छा होती है। किन्तु आमड़ा में है क्या? गुद्दा है नहीं, केवल गुठली और चमड़ा; खाने पर अम्लशूल होता है। जिस भी उपाय से ईश्वर को ही 'मेरा' कहकर उनसे प्रेम हो, यही करना अच्छा है!"

वैद्य के निकट नहीं जाने पर रोग अच्छा नहीं होता। साधु-संग एक दिन करने पर नहीं होता। सर्वदा ही करने की आवश्यकता है। सबके लिए ही यह आवश्यकता है। संन्यासी के लिए भी इसकी आवश्यकता है।

"एक साधु गुरु के उपदेशानुसार निर्जन स्थान में एक साधारण कुटिया बनाकर साधन-भजन करने लगे। वे प्रतिदिन स्नान कर एक पेड़ पर अपने वस्त्र और कौपीन सूखने के लिए धर देते थे। साधु जब भिक्षाटन के लिए बाहर जाते तब चूहा आकर कौपीन काट देता। भिक्षा के लिए निकलकर साधु लोगों से चूहे के उपद्रव की बात बताते और नया कौपीन माँगते। उन लोगों ने एक दिन कहा—'आपको रोज-रोज कौन नया कौपीन देगा? आप एक काम करें। एक बिल्ली पालें, तब बिल्ली के भय से फिर चूहा नहीं आयगा।' उनलोगों ने साधु को एक बिल्ली का बच्चा दिया। भिक्षा में दूध लाकर साधु उस बिल्ली को खिलाने लगे। कुछ दिनों के बाद लोगों ने साधु से कहा, 'साधुजी, आपको रोज दूध की जरूरत है। बारहों महीने आपको कौन दूध देगा? आप एक गाय पालें, इससे आप स्वयं दूध खा पायेंगे और बिल्ली को भी खिला सकेंगे।' यह कहकर गाँव-वालों ने उन्हें एक गाय दी। तब साधु उस गाय के लिए घास-चारा की भिक्षा माँगने लगे। तब गाँव के लोगों ने उनसे कहा, 'आप कुटिया के निकट खाली जमीन पर खेती करें, इससे फिर पुआल की भीख नहीं माँगनी पड़ेगी।' तब साधु खाली पड़ी हुई भूमि पर खेती करने लगे। फसल रखने के लिए भुसकार आदि तैयार कर गृहस्थों की भाँति अत्यन्त व्यस्त होकर दिन बिताने लगे। कुछ दिनों के बाद साधु के गुरु उस स्थान पर आ उपस्थित हुए। उन्होंने शिष्य से पूछा, 'वत्स, यह सब क्या है?' शिष्य ने अप्रतिहत होकर कहा, 'प्रभु, यह सब एक कौपीन के वास्ते हो गया।' गुरु के दर्शन से उनके सारे मोह कट गये और तभी सब कुछ त्यागकर वे गुरु के साथ चले गये। देखो, एक कौपीन के लिए कितने कष्ट हैं!"

जिन लोगों को 'मेरा' समझकर जीव संसार में अशेष दुःखों का भोग करता है, उनलोगों का उस व्यक्ति के लिए प्रेम कितना स्वल्प है इसे वह समझ नहीं पाता है। समझ पाते ही आसक्ति के हाथ से, माया के बन्धन से, वह मुक्त हो जाता है।

"गुरु ने शिष्य को कहा, 'संसार मिथ्या है। तू मेरे साथ चला आ। ईश्वर ही तुम्हारे अपने हैं, और कोई अपना नहीं है।' शिष्य ने कहा, 'प्रभु, ये सब मुझे इतना प्यार करते हैं—मेरी माँ, मेरे पिताजी, मेरी स्त्री—इन सबको छोड़कर कैसे जाऊँगा?' गुरु ने कहा, 'तू मेरा-मेरा करता है, और कहता है, वे सब प्रेम करते हैं—यह तेरे मन की भूल है। मैं तुझे दिखा देता हूँ, कोई तेरा अपना नहीं। इस दवा की कुछ गोलियाँ अपने पास रख ले। तू घर जाकर कुछ गोलियाँ खाकर सो रहना। लोग समझेंगे कि तेरा देहान्त हो गया है। किन्तु, तेरा ज्ञान नहीं जायगा, सब कुछ देख-सुन सकोगे। मैं उसी समय आ जाऊँगा। इसके बाद धीरे-धीरे तुझे पहलेवाली अवस्था हो जायगी।' शिष्य ने वैसा ही किया। घर पर रोना-पीटना शुरु हो गया। इसी समय गुरु कविराज के वेश में आ उपस्थित हुए। सब कुछ सुनकर बोले, 'अच्छा, इसकी दवा है—फिर बच जायगा।' घर के सभी लोगों को जैसे हाथ में स्वर्ग मिल गया। तब उस कविराज ने कहा, 'तब एक बात है, दवा पहले किसी एक आदमी को खानी होगी। इसके बाद इसको खिलायी जायगी। किन्तु जो पहले खायगा, उसकी मृत्यु हो जायगी। तब, यहाँ उसकी माँ या पत्नी—इसको तो सभी हैं, कोई-न-कोई खायगी ही, इसमें सन्देह नहीं। यह होते ही लड़का जी उठेगा।' तब सब रोना छोड़कर चुप हो गये। शिष्य सारी बातें सुन रहा है। कविराज ने पहले माँ को पुकारा। माँ ने कहा, 'यही तो, यह बड़ा संसार है, मेरे जाने पर कौन यह सब देखे-सुनेगा, यही सोच रही हूँ।' पत्नी अभी-अभी कहती थी, 'अरी बहना, मेरा क्या होगा री?' तब रोते-रोते कहने लगी, 'उनका तो जो होना था वह हो गया है, मेरे छोटे-छोटे बच्चों का अब क्या होगा, मैं यदि जाती हूँ तो इन लोगों को कौन देखेगा? मैं कैसे वह दवा खाऊँगी? तब शिष्य का नशा चला गया। वह उठ खड़ा हुआ और बोला, 'गुरुदेव चलिए,। यह कहकर वह गुरु के साथ चला गया।"

सांसारिक प्रेम-बन्धन को वस्तुतः इसी प्रकार तुच्छ कहकर श्रीरामकृष्णदेव गृही व्यक्ति को लक्ष्यकर कहते हैं—"इतने दिनों तक संसार करके तो देख लिया, सब फाँकीबाजी है। ईश्वर ही सत्य हैं और सब कुछ दो दिनों के लिए हैं। और इनमें कुछ नहीं है। आमड़े की चटनी खाने की इच्छा होती है। किन्तु आमड़ा में है क्या? गुद्दा है नहीं, केवल गुठली और चमड़ा; खाने पर अम्लशूल होता है। जिस भी उपाय से ईश्वर को ही 'मेरा' कहकर उनसे प्रेम हो, यही करना अच्छा है!"

वैद्य के निकट नहीं जाने पर रोग अच्छा नहीं होता। साधु-संग एक दिन करने पर नहीं होता। सर्वदा ही करने की आवश्यकता है। सबके लिए ही यह आवश्यकता है। संन्यासी के लिए भी इसकी आवश्यकता है।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची एवं पटना में राष्ट्रीय युवा वर्ष

राँची, १२ जनवरी। भारत सरकार के इस निर्णय के अनुसार कि स्वामी विवेकानन्द जी का जन्म दिवस (१२ जनवरी) १९८५ ई० से प्रति वर्ष युवा-दिवस के रूप में मनाया जायगा, रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची के तत्वावधान में आज आश्रम के प्राङ्गण में युवा-दिवस उल्लासपूर्वक आयोजित किया गया। प्रायः २५० से अधिक युवकों ने इसमें भाग लिया। आश्रम के ब्रह्मचारियों द्वारा वैदिक मंत्रों के सस्वर पारायण से समारोह का शुभारंभ हुआ और युवकों द्वारा विवेकानन्द-स्तवन का गायन हुआ। आश्रम के सचिव स्वामी शुद्धव्रतानन्द जी महाराज ने समारोह में सम्मिलित युवकों का स्वागत करते हुए इस विषय पर प्रकाश डाला कि स्वामी विवेकानन्द जी के जन्म-दिवस को ही क्यों युवा-दिवस समारोह आयोजित किया गया है। बिरसा विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ० एच० आर० मिश्र ने समारोह का उद्घाटन करते हुए युवकों से स्वामीजी के उपदेशों का, जो आज भी काफी प्रासंगिक हैं, अनुसरण करने का आग्रह किया। स्वामी भवहरानन्द जी ने 'आधुनिक युवकों के लिए स्वामी विवेकानन्द के संदेश की प्रासंगिकता' विषय पर अपना मुख्य अभिभाषण करते हुए कहा कि युवकों को स्वामी जी की आशाएँ पूरी करनी होंगी जो सदा की भाँति आज भी प्रासंगिक हैं। प्रायः २० युवकों ने भी स्वामी विवेकानन्द के जीवन और संदेश के सम्बन्ध में अपने उद्गार व्यक्त किये।

अंत में स्वामी विवेकानन्द के जीवन और संदेश पर आधारित हिन्दी चलचित्र का प्रदर्शन हुआ। इस अवसर पर राँची की सभी पत्र-पत्रिकाओं ने स्मारिका का प्रकाशन किया। समारोह में समाचार-पत्रों, आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के प्रतिनिधिगण भी उपस्थित थे।

पटना, १२ जनवरी। स्थानीय रामकृष्ण मिशन आश्रम में युवा वर्ष के अवसर पर आयोजित समारोह में लेख एवं भाषण प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिसमें स्वामीजी के जीवन और संदेशों के प्रिय पक्षों पर युवकों ने अपने विचार व्यक्त किये। प्रायः ५० युवकों ने इस कार्यक्रम में भाग लिया।

छपरा, १२ जनवरी। स्थानीय जगदम कॉलेज में युवा-दिवस का आयोजन प्राचार्य सुशील कुमार सिंह की अध्यक्षता में हुआ। डॉ० केदारनाथ लाभ ने समारोह का उद्घाटन करते हुए 'स्वामी विवेकानन्द और युवजन' विषय पर विचारोत्तेजक भाषण दिया। समारोह के आयोजक थे प्रो० कृष्ण कुमार द्विवेदी। प्रो० हरिकिशोर पाण्डेय ने धन्यवाद ज्ञापन किया। स्थानीय राजेन्द्र कॉलेज एवं अन्य सभी शिक्षण-संस्थाओं में भी इस अवसर पर समारोह का आयोजन हुआ।

विवेकानन्द-जयन्ती : रामकृष्ण आश्रम, छपरा

छपरा, १३ जनवरी। स्थानीय रामकृष्ण आश्रम में, स्वामी विवेकानन्द जी के १२३ वें जन्म-दिवस के अवसर पर द्वि-दिवसीय कार्यक्रमों का आयोजन हुआ। १३ जनवरी को विशेष पूजा, चंडी पाठ, हवन और प्रसाद-वितरण के साथ रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य की प्रदर्शनी का आयोजन हुआ। १५ जनवरी को स्थानीय-नगरपालिका भवन में प्राचार्य सुशील कुमार सिंह की अध्यक्षता में एक जन-सभा आयोजित की गयी। सभा का उद्घाटन सारण के जिलाधीश श्रीचिन्तुनायक, आइ० ए० एस० ने किया। मुख्य अतिथि के रूप में रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वारणसी के स्वामी ब्रह्मेशानन्दजी महाराज ने 'स्वामी विवेकानन्द का वर्त्तमान भारत को संदेश' विषय पर बड़ा ही मर्म-स्पर्शी, विचारपूर्ण एवं सारगर्भ प्रवचन दिया। उन्होंने कहा कि विवेकानन्द मनुष्य का निर्माण करना चाहते थे और आज मनुष्य बनने की सर्वाधिक आवश्यकता है। उन्होंने लोगों को पवित्र जीवन जीने की प्रेरणा देते हुए कहा कि नये भारत के निर्माण के लिए हमें स्वामीजी के द्वारा बताये मार्गों पर चलना ही होगा। आश्रम के सचिव डॉ० केदारनाथ लाभ ने अतिथियों का स्वागत किया। श्रीअभियनाथ चटर्जी ने आश्रम का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया और प्रो० अनन्त कुमार वर्मा

ने धन्यवाद ज्ञापन किया। सभा में नगर के प्रबुद्ध वर्ग के लोग पर्याप्त संख्या में उपस्थित थे।

स्वामी ब्रह्मेशानन्दजी महाराज ने १६ जनवरी को स्थानीय राजेन्द्र कॉलेज और गंगा सिंह कॉलेज में छात्रों और शिक्षकों को सम्बोधित करते हुए स्वामी विवेकानन्द के संदेशों के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालकर नगर में विवेकानन्द भावधारा की स्मरणीय लहर उत्पन्न कर दी।

दिव्यायन में कृषि-मेला

राँची, २१ जनवरी। गत १९ एवं २० जनवरी को दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र, मोराबादी, राँची के गेतालसूद फार्म (अंगारा प्रखण्ड के अन्तर्गत, राँची से करीब ३५ कि० मी० दूर) में एक किसान मेले का आयोजन किया गया। वृहत् संख्या में एकत्र किसानों एवं उच्चाधिकारियों की उपस्थिति में श्री एन० पी० सिंह (आयुक्त, दक्षिण छोटानागपुर डिवीजन) ने इस मेले का उद्घाटन किया। उन्होंने किसानों को दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र के विशेषज्ञों से सहज प्राप्य 'ड्राइ लैंड फार्मिंग से विशेष रूप से लाभ उठाने के लिए प्रोत्साहित किया और किसानों तथा रामकृष्ण मिशन आश्रम को इसके विविध क्रिया-कलापों के हेतु सरकार की ओर से सभी संभव मदद का आश्वासन भी दिया। श्री एच० सी० सिरोही (उप विकास आयुक्त, राँची) ने दिनांक २० जनवरी को ३ बजे किसान मेला के समापन सामारोह की अध्यक्षता की और उन किसानों को जिन्होंने मेले में अपनी प्रविष्टियाँ रखीं तथा उन ग्रामीणों को जिन्होंने सफलतापूर्वक दिनांक ५ जनवरी, १९८५ को आश्रम द्वारा आयोजित अंतर ग्रामीण खेल-कूद प्रतियोगिता में भाग लिया, पुरस्कार प्रदान किया। श्री सिरोही ने समर्पित सेवाभाव से गाँवों में नयी तकनीक को पहुँचाकर गरीबों एवं सीमान्त किसानों को लाभान्वित करने के लिए रामकृष्ण मिशन आश्रम की सराहना की। उन्होंने मिशन द्वारा राष्ट्रीय ग्रामीण नियोजन योजना के तहत तालाब उत्खनन कार्य की सफलतापूर्वक समाप्ति एवं उसके किनारे की जमीन में केले के वृक्ष उगाने की भी प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि उन्हें गेताल सूद और महेशपुर फार्मों में हाल ही में स्थापित 'विन्ड मीलों' को देखकर भी प्रसन्नता हुई। उन्होंने बताया कि किसानों के 'प्लाटों' में स्थापित करने हेतु सौ विन्ड मीलों की स्वीकृति दे दी गयी है। उन्होंने आश्रम एवं अन्य स्वैच्छिक संस्थाओं से सरकार को उसके विभिन्न विकास कार्यक्रमों में सहयोग देने की माँग की और सरकार की ओर से सभी संभव सहयोग का आश्वासन दिया।

प्रदर्शनी में विभिन्न संस्थाओं द्वारा भी 'स्टॉल' लगाये गये थे। जैसे, केन्द्रीय तसर अनुसन्धान संस्थान, भारतीय लाख अनुसन्धान संस्थान, ग्राम विकासकेन्द्र (टेल्को, जमशेदपुर), भारतीय मत्स्यपालन विभाग, वन विभाग (बिहार सरकार), बैंक ऑफ इंडिया, क्षेत्रीय ग्रामीण विकास बैंक, खादी बोर्ड, खाद्य और पोषण विभाग (भारत सरकार), बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, आदि। किसानों द्वारा फसल सब्जी एवं फल की प्रतियोगिता में लगभग ५३० प्रविष्टियाँ एवं पशुओं की प्रतियोगिता में ६७ प्रविष्टियाँ आयीं।

श्रीरामकृष्ण जन्मोत्सव

रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना में २१ फरवरी से २७ फरवरी, ८५ तक भगवान् श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव का १५० वाँ जन्मोत्सव मनाया जायगा। २१, २२ फरवरी को स्वामी निखिलात्मानन्द जी महाराज रामचरित मानस पर प्रवचन देंगे। २३ फरवरी को विद्यार्थी-दिवस (पुरस्कार-वितरण-सभा) का श्रीहीरानन्द शास्त्री, संपादक आर्यावर्त सभापतित्व करेंगे। वक्ता होंगे स्वामी तत्त्वस्थानन्द एवं स्वामी सत्यरूपानन्दजी महाराज। २४ फरवरी को आयोजित आम-सभा का सभापतित्व स्वामी सत्यरूपानन्दजी महाराज करेंगे। विषय होगा—श्रीरामकृष्ण-वाणी की युगोपयोगिता। २५ से २७ फरवरी तक संध्या ६-४५ से विभिन्न गीति-नाट्यों का प्रदर्शन होगा।

पवित्र होना और दूसरों का हित करना—सभी उपासनाओं का यही सार है। जो दरिद्रों में, दुर्बलों में और रोगियों में शिव को देखता है, वही शिव की सच्ची पूजा करता है और यदि वह केवल प्रतिमा में शिव को देखता है, तब उसकी पूजा मात्र प्रारंभिक है।

—स्वामी विवेकानन्द

मंगल कामनाओं के साथ :

मंगला मेटल्स

मेटल फन्टेनर के निर्माता

एवम् जेनरल आर्डर सप्लायर्स

ए २, पत्रकार नगर,

कंकड़बाग कॉलोनी,

पटना—२०

This is the gist of all worship—to be pure and to do good to others. He who sees Siva in the poor, in the weak, and in the diseased, really worships Siva; and if he sees Siva only in the image, his worship is but preliminary.

—SWAMI VIVEKANANDA

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

MANGALA METALS

(Manufacturer of Metal Container and General Order Suppliers)

A 2, Patrakar Nagar,

Kankarbagh Colony,

PATNA—20